यों, मेरे दिल का मामला
ने रुसवा किया मुझ ।

—ग़ालिब ।

प्रकाशन केन्द्र : लखनऊ

ीवान

ालिब

संपादक

ओंकार शरद

प्रकाशन केन्द्र

िसग, सीतापुर रोड, लखनऊ-226007

(Phone 31858)

- प्रकाशक : प्रकाशन केन्द्र,
  रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ-226007
- मूल्य : बारह रुपये पचास पैसे (Rs. 12·50) मात्र
- मुद्रक : [illegible] प्रेस

"कभी-कभी संसार में ऐसा कवि जन्म लेता है, जो किसी भी दृष्टिकोण और व्याकरण के गोरखधंधों से स्वतंत्र होकर केवल हृदय की भावनाओं का उपासक होता है—ग़ालिब ने अपने लिए यही रास्ता चुना। उसके वीणा की मधुर तान एक आकाश से दूसरे आकाश की ओर उड़ती चली जाती है, यहाँ तक कि सभी जगहों पर ग़ालिब ही ग़ालिब दिखाई देते हैं।"

डाक्टर अब्दुर्रहमान बिजनौरी

ग़ालिब—जीवन और कला

पूछते हैं वो कि ग़ालिब कौन है
कोई बताअ कि हम बतलायें क्या,

अपने ऊपर जब प्रश्नों की असह्य वर्षा हुई तो ग़ालिब ने बहुत खीझ कर यह शेर कहा था।

'ग़ालिब कौन है ?'
'ग़ालिब बहुत मुश्किल कहता है।'
'ग़ालिब अदब को बरबाद कर रहा है!'
'ग़ालिब आखिर क्यों लिखता है ?'

किसे ग़ालिब क्या उत्तर देते! उपरोक्त शेर कह कर चुप रहे। तभी उस समय के महाकवि मीर तकी 'मीर' ने भविष्य-वाणी की थी—"अगर इसे कोई कामिल उस्ताद मिल गया और उसने इसे सीधे रास्ते पर डाल दिया तो यह लाजवाब शायर बनेगा, वरना मोहमल (अर्थहीन) ही बकने लगेगा।"

ग़ालिब का एक शेर ही इसका उत्तर है—

है और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे,
कहते हैं कि ग़ालिब का है अंदाज़ें बयाँ और।

ग़ालिब को अपनी शायरी के कारण जिन्दगी में तारीफ़ बहुत कम और गालियाँ बहुत अधिक खानी पड़ीं। मुशायरों में उनका अपमान तो एक मामूली-सी बात थी। परम्पराओं से विद्रोह करके और पुरानी डगर से हट कर बात कहने का उनका अपना ढंग था। जिसे उस समय के शायर, आलोचक और जनता कोई पसन्द न करता था। इसी से ग़ालिब को पग-पग पर यह अपमान सहना पड़ा। लेकिन ग़ालिब को अपनी स्थिति का पूरा ज्ञान था। वे जानते थे कि कभी न कभी वह समय आएगा जब लोग उनको और उनकी कविता को समझेंगे और वह समय आया भी जब उनका 'दीवान' उर्दू साहित्य का सरताज बन गया। ग़ालिब ने कहा है—

ये मसायले तसव्वुफ़ ये तेरा बयान ग़ालिब
तुझे हम वली समझते जो न बादाख़ार होता।

ग़ालिब के बारे में शायद इससे बड़ी बात नहीं कही जा सकती। उनका स्थान उर्दू साहित्य में एक साहित्यिक 'वली' का तो है ही लेकिन अपने बादाखार होने के कारण वे अपने को 'वली' नहीं कहते। इसीलिए जीवन भर उनके साथ लोगों ने वही व्यवहार किया जो हर युग में हर वली के साथ हुआ है। समय ने उनकी हस्ती मिटा देने के लिए क्या कुछ नहीं उठा रखा लेकिन वे तो अपने रूप में दुनिया को कुछ न कुछ अमरत्व प्रदान करने आए थे।

उर्दू काव्य-लोक में ग़ालिब का स्थान बहुत ऊँचा है। इनकी ऊँचाई का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है कि उनके सैकड़ों शेर आज आम-जनता की जुबान से चिपक गए हैं। आज भी ग़ालिब अपनी रचनाओं में उतना ही महान है जितना शताब्दी पूर्व था। ग़ालिब की काव्य-लहरी की तरंग देखिए :—

सादिक हूँ अपने कौल का ग़ालिब ख़ुदा गवाह
कहता हूँ सच कि झूठ की आदत नहीं मुझे।

●

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन
दिल के बहलाने को ग़ालिब यह ख़्याल अच्छा है।

●

हमको उनसे है वफ़ा की उम्मीद
जो जानते नहीं वफ़ा क्या है।

⊛

वे आएँ घर हमारे खुदा की कुदरत है
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं।

इस तरह के सैकड़ों पद हैं जो लिखने वालों की नोके-कलम और पढ़ने वालों की नोके-ज़बान बन गए हैं।

गालिब की महानता का एक और भी सुबूत प्रत्यक्ष है। हर युग में कोई भी प्रतिभावान व असाधारण व्यक्ति, अपने जीवन काल में समाज द्वारा उपेक्षित हो रहता है। गालिब के सम्बन्ध में भी यह हुआ है। अपने जीवन-काल में गालिब को दुनिया से तिरस्कार व उपेक्षा के अलावा कुछ न मिला। एक बार इसी स्थिति के सम्बन्ध में गालिब ने 'ज़ौक' को संकेत करते हुए कहा—

सौ पुश्त से आया है पेशा सिपाहीगिरी
कुछ शायरी जरीआ इज्ज़त नहीं मुझे।

लेकिन ग़ालिब यह भी जानते थे कि उनका काव्य अमर होकर रहेगा। 'हैं और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे' वाला शेर ग़ालिब की खीझ और आत्म-विश्वास दोनों का प्रतीक है। यद्यपि 'यश प्राप्ति' की लालसा का वे दमन कर चुके थे, पर उन्हें अपने स्थान का पता तो था ही।

मिर्ज़ा गालिब का महत्व उनके अपने युग में तो जो भी रहा हो पर आज के प्रगतिवादी युग में भी उनकी महानता स्वीकार की जा रही है।

उर्दू शायरों में महाकवि मीर को छोड़ कर आज तक किसी शायर को गालिब सी लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी बल्कि अगर कहा जाय तो ग़लत न होगा कि 'दीवान-ग़ालिब' काव्य-प्रेमियों के लिए धार्मिक पुस्तक का स्थान ले चुका है। 'दीवान-गालिब' के अब तक कितने संस्करण छप चुके हैं इसका कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता।

ग़ालिब के पाठकों को ज्ञात है कि गालिब की काव्य-वाटिका जीवन की कंटीली झाड़ियों से घिरी थी। फूलों से लदी झाड़ियाँ उनकी किस्मत में कम ही रही हैं।

ग़ालिब वियोग में गहरी आहें भरते हैं। उनके 'नाले' आकाश को छूते हैं। 'कोई उम्मीद बर नहीं आती। कोई सूरत नज़र नहीं आती' जैसे आहों में डूबे, गीले, सजल-गान मन में घनीभूत पीड़ा का उद्रेक करते हैं। गालिब अपने

कल्पना-लोक में बिना दीवार का घर बनाते हैं जो उनकी मौलिक सृष्टि की अनुपम कृति है।

ग़ालिब के जीवन को देख कर स्पष्ट लगता है कि क़िस्मत की मार से ग़ालिब हमेशा संघर्षरत रहे। दीन-हीन, खस्ताहाल। वे कहते हैं—'ग्राह को इक अरसा चाहिए असर होने तक' इसीलिए वे लम्बी आयु तक प्रतीक्षा करते रहे—संघर्ष में डूबे। कभी-कभी जब दुख असह्य होता होगा तो वे मृत्यु को भी पुकारते होंगे, फिर बेकरार दिल को समझाते भी होंगे।

'कभी तो आएगी क्यों करते हो जल्दी ग़ालिब'।

ग़ालिब का पूरा नाम था असद-उल्ला खाँ ग़ालिब। इनके दो उपनाम थे। जीवन के प्रारम्भिक दिनों में 'असद' फिर 'ग़ालिब'। इनका जन्म २७ दिसम्बर १७९७ को आगरे में हुआ था। अपने पूर्वजों और वंश के बारे में मिर्ज़ा ने एक जगह खुद लिखा है—"असद-उल्ला खाँ उर्फ़ 'मिर्ज़ा नौशा', 'ग़ालिब' तखल्लुस, कौम का तुर्क, सलजूकी सुल्तान बरकियारुक सलजूकी की औलाद में से, उसका दादा क़ाक़ौन बेग खाँ, शाहआलम के अहद में समरकन्द से दिल्ली आया। पचास घोड़े और नक्कारा निशान से बादशाह का नौकर हुआ। पहासू का परगना, जो समरू बेगम को सरकार से मिला था उसकी जायदाद में मुकर्रर था। बाप असद-उल्ला खाँ मजकूर का अब्दुल्ला बेग खाँ दिल्ली की रियासत छोड़कर अकबराबाद (आगरा) में जा रहा। असद-उल्ला खाँ अकबराबाद में पैदा हुआ।"

ग़ालिब की शादी दिल्ली में हुई थी। इसीलिए दिल्ली वाले उन्हें 'मिर्ज़ा नौशा' कहते थे और अन्तिम बादशाह बहादुरशाह की ओर से उन्हें नजमुद्दौला, दबीरुलमुल्क, निज़ामजंग की उपाधियाँ मिली थीं। मिर्ज़ा की ननिहाल आगरे में थी। इनकी माता काफी पढ़ी लिखी महिला थी और नाना मिर्ज़ा गुलाम हुसैन एक फौजी अफसर थे और आगरे के बहुत बड़े रईस थे। मिर्ज़ा ने एक जगह लिखा है—"हमारी बड़ी हवेली वह है जो अब लखीचन्द सेठ ने खरीद ली है। उसी के दरवाजे की संगीन बारादरी पर मेरी नशिस्त थी और पास उसके एक 'खटिया वाली हवेली' और सलीमशाह के तकिये के पास एक दूसरी हवेली और काले महल से लगी हुई एक और हवेली और उससे आगे बढ़ कर एक कटरा जो 'गड़रियों वाला' मशहूर था। एक और कटरा जो 'कश्मीरन वाला' कहलाता था। इस कटरे के एक कोने पर मैं पतंग उड़ाता था और राजा बलवानसिंह से पतंग लड़ा करते थे।"

यह बड़ी हवेली जिसका ऊपर जिक्र है अब भी पीपलमंडी आगरा में है।

इसी का नाम काला महल है, बहुत आलीशान इमारत। किसी जमाने में यह राज गजसिंह की हवेली कहलाती थी जो जोधपुर के राजा सूरजसिंह के बेटे थे और जहाँगीरी जमाने में यहाँ रहते थे।

ऐसा अनुमान हैं कि मिर्ज़ा इसी मकान में पैदा हुए होंगे क्योंकि मिर्ज़ा के पिता ससुराल में घर-जमाई बनकर रहते थे।

पिता के देहान्त के समय मिर्ज़ा की आयु पाँच बरस की थी। अब वह अपने चाचा नसीरुल्ला बेग की छत्रछाया में रहने लगे, किन्तु चार बरस बाद ही हाथी पर से गिरकर चाचा भी मर गये। अब स्थायी रूप से मिर्ज़ा को ननिहाल में रहना पड़ा। पिता की मृत्यु के बाद अलवर राज्य की ओर से मिर्ज़ा और उनके भाई को दो गाँव और कुछ मासिक पेंशन में बंधी।

मिर्ज़ा के चचा को अँग्रेजी राज्य की ओर से आगरा ज़िले में ही दो गाँव मिले थे और उनके मरने के बाद सरकार की ओर से इन लोगों को साढ़े सात सौ रुपया सालाना पेंशन मिलती रही जो १८५७ के गदर तक जारी रही। मिर्ज़ा का बचपन आगरे में बीता। फारसी अरबी की प्रारम्भिक शिक्षा तो आगरे में हुई, लेकिन इसका पूरा ब्यौरा कहीं नहीं मिलता। लगता है ढंग से पढाई-लिखाई नही हुई होगी लेकिन मिर्ज़ा ने जैसे भी हो हर विषय पर ज्ञान अर्जित किया होगा क्योंकि उनकी रचनाओं में ज्योतिष, तर्क, दर्शन, संगीत, नक्षत्र विज्ञान, पदार्थ विज्ञान आदि हर विषय की असंख्य परिभाषायें मिलती हैं। कहा जाता है कि मिर्ज़ा को प्रारम्भिक दिनों में प्रसिद्ध उर्दू शायर नज़ीर अकबराबादी ने भी थोड़े दिन पढ़ाया था। दस-ग्यारह वर्ष की आयु में ही ये शेर कहने लग गये थे।

जब मिर्ज़ा की उम्र १४ वर्ष की हुई तब उन्हें फ़ारसी का एक बहुत बड़ा पंडित शिक्षक के रूप में मिल गया। मिर्ज़ा के इस शिक्षक का पारसी नाम हुरमुज था जो इस्लाम धर्म ग्रहण करने के बाद मुल्ला अब्दुल समद के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। मिर्ज़ा ने उनसे दो वर्ष तक फ़ारसी पढ़ी। मिर्ज़ा का झुकाव शुरू से ही फ़ारसी की ओर था। अएतव अपने इस गुरु से उन्होंने बहुत कुछ सीखा। अपने गुरु पर मिर्ज़ा को बड़ा गर्व था क्योंकि उनकी शिक्षा ने ही मिर्ज़ा को फ़ारसी का ऐसा पंडित बना दिया था कि वह ईरानियों की भाँति फ़ारसी बोल और लिख सकते थे।

९ अगस्त १८१० में १३ वर्ष की उम्र में मिर्ज़ा का विवाह दिल्ली के प्रसिद्ध शायर और नवाब लुहारू के छोटे भाई नवाब इलाही बख्श खाँ मारूफ की बेटी उमराव बेगम से हुआ। ये मिर्ज़ा से दो साल छोटी थीं। यों तो

मिर्ज़ा बराबर आगरे से दिल्ली आते-जाते रहते थे पर शादी के दो-तीन साल बाद स्थायी रूप से दिल्ली में ही बस गये एक जगह मिर्ज़ा ने खुद लिखा है —"सात रजब बारह सौ पचीस[1] को मेरे वास्ते हुक्मेदवामे-हब्स[2] सादिर हुआ। एक बेड़ी[3] मेरे पाँव में डाल दी और दिल्ली शहर को ज़िन्दान[4] मुक़र्रर किया और मुझे उस ज़िन्दान में डाल दिया।"

शेरो-शायरी का चस्का पहले से था ही। दिल्ली का वातावरण सोने में सुगन्ध के काम आया। उनकी शायरी गूँज उठी। मुशायरों की धूम तो थी ही फिर मिर्ज़ा की शादी प्रसिद्ध शायर की बेटी से हुई थी अतः मिर्ज़ा के हृदय में शायरी की उमंग जो उठती थी वह बहुत ताकतवर होती थी।

इतिहासकारों में इस बात का झगड़ा है कि मिर्ज़ा ने पहले फ़ारसी में लिखना शुरू किया या उर्दू में।

लेकिन फ़ारसी भाषा पर मिर्ज़ा को जो अधिकार प्राप्त था उससे यही अनुमान होता है कि उन्होंने पहले फ़ारसी में शेर कहे होंगे। इस विचार की पुष्टि मिर्ज़ा के आरम्भ के उर्दू कलाम को देख कर भी होती है जिसमें फ़ारसी शब्दों की इतनी भरमार है कि केवल एक शब्द बदल देने से वे फ़ारसी के बन जाते हैं। इसी प्रकार उनकी प्रारम्भिक शायरी भाषा की दृष्टि से तो कठिन है ही, भाव की दृष्टि से भी वह बड़ी क्लिष्ट है। इसका मुख्य कारण है कि ग़ालिब ने उर्दू शायरी में भी प्रसिद्ध फ़ारसी कवि 'बेदिल' का रंग अपनाया जो सीधी बात को भी बहुत घुमा-फिरा कर कहने और विचित्र उपमाओं के लिये प्रसिद्ध हैं। इसका फल यह हुआ कि मिर्ज़ा भी सीधी सादी बात को विचित्र उपमाओं और कठिन से कठिन शब्दों में कहने का प्रयास करने लगे। कभी-कभी मिर्ज़ा इस प्रयास में सफल भी हो जाते थे और शेर में नई बात पैदा हो जाती थी। लेकिन अधिकांश शेर नीरस और कभी-कभी तो बिलकुल ही बेमानी हो जाते।

मिर्ज़ा ग़ालिब ने शायरी में किसी को अपना उस्ताद ही नहीं बनाया। स्वयं अपने गुण-दोष की विवेचना करते रहे और अपने लिये रास्ता खोजते रहे। इसी खोज ने उन्हें रहस्यवादी कवि बनने से बचा लिया और वह भाषा तथा भाव की ओर खिंच आये। उनकी प्रतिभा गज़ब की थी और उनकी योग्यता अद्वितीय थी। अतएव उनकी कल्पना की उड़ान वैसी ही ऊँची रही। साथ ही भाषा की सरलता के कारण लोग भी उनकी शायरी समझने लगे।

१—९ अगस्त १८१० २—स्थायी कैद का हुक्म ३—बेड़ी का अर्थ यहाँ बीबी से है। ४—कैदखाना।

मिर्ज़ा के समकालीन कवियों और विद्वानों में 'ज़ौक', 'मोमिन', 'नसीर', मौलाना 'आज़ुर्दा', नवाब 'शेफ्ता', नबी बख्श 'हक़ीर', मौलवी इमाम बख्श सहबाई और मौलवी फ़ज़ल हक़ खैराबादी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मिर्ज़ा बड़े उदार चित्त और बड़े विनम्र स्वभाव के आदमी थे, फिर भी कुछ लोगों से उनकी खूब नोक-झोंक रहती थी। कुछ तो इससे कि मिर्ज़ा हिन्दुस्तान में अमीर खुसरो और 'फ़ैज़ी' के अतिरिक्त किसी फ़ारसी कवि की महानता स्वीकार न करते थे और कुछ इस कारण कि उनकी शायरी बड़ी कठिन होती थी, कुछ लोग, (जिनमें, मौलाना आज़ुर्दा और ज़ौक तथा उनके शिष्य भी शामिल थे,) मिर्ज़ा की शायरी की बहुधा हँसी उड़ाया करते थे। मिर्ज़ा ने उन लोगों को कई जगह जवाब दिया है। एक जगह कहते हैं—

> न सतायश की तमन्ना न सिले की परवा
> न सही गर मेरे अशआर में मानी न सही

एक और जगह आपत्ति करने वालों की नासमझी का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

> मुश्किल है ज़बस कलाम मेरा ए दिल
> सुन सुनके उसे सुखनवराने-कामिल।
> आसां कहने को करते हैं फ़रमायश
> गोयम मुश्किल वगर न गोयम मुश्किल

इस पंक्तियों का अर्थ तो यह है कि मैं शेर कहता हूँ तो लोग उसे मुश्किल बताते हैं और मुश्किल नहीं कहता यानी आसान कहता हूँ तो भी मुश्किल है क्योंकि यह मेरी तबीयत के खिलाफ है। दूसरा मतलब यह है कि इस विषय में साफ-साफ कहूँ तो आपत्ति करने वालों की मूढ़ता प्रकट करनी पड़ती है, यह भी मेरे स्वभाव तथा शिष्टता के खिलाफ है और साफ-साफ बात नहीं कहता तो अपने ऊपर इलजाम आता है। हर हाल में मुश्किल है।

मिर्ज़ा ने एक बार एक सरल शेर सुनाया—

> लाखों लगाव एक चुराना निगाह का,
> लाखों बनाव एक बिगड़ना अताब में।

यह शेर जितना सरल है उतना ही ऊँचा भी है। मौलाना आज़ुर्दा ने तारीफ तो की किन्तु साथ ही यह भी कह दिया कि इसमें मिर्ज़ा की क्या खूबी है, यह तो हमारी तर्ज़ का शेर है, यानी ऐसे सरल शेर तो हम लोग कहते हैं। कभी-कभी लोग मुशायरों में खुल्लम-खुल्ला भी चोट किया करते थे। वे ऐसे

शेर लिख कर लाते और मुशायरों में सुनाते जिनमें अरबी फारसी के क्लिष्ट शब्द तो खूब होते किन्तु अर्थ कुछ न होता। ऐसे शेरों की दूसरे लोग यह कह-कर दाद देते कि मिर्ज़ा ग़ालिब के रंग में क्या खूब शेर कहा है। एक बार हकीम आग़ा जान ने मुशायरे में मिर्ज़ा को सम्बोधित कर यह कता (चौपदा) पढ़ा—

अगर अपना कहा तुम आप ही समझे तो क्या समझे,
मजा कहने का जब है एक कहे और दूसरा समझे।
कलामे-मीर[1] समझे और जबाने मीरज़ा[2] समझे,
मगर इनका कहा ये आप समझें या खुदा समझे ॥

परन्तु मिर्ज़ा ग़ालिब ने कभी इन लोगों की कोई खास परवाह नही की। वह इसे अपना दोष न समझते थे वरन उन लोगों का कुसूर समझते थे जो उनकी ऊँची शायरी को समझ न पाते थे। आखिर एक बार बहुत झुंझला कर उन्होंने फ़ारसी के अपने विरोधियों से साफ कह दिया कि तुम्हें जिस उर्दू शायरी पर नाज़ है मैं उस भाषा में शेर कहना अपने लिये शर्म की बात सम-झता हूँ। वास्तव में मिर्ज़ा को अपनी फ़ारसी पर बड़ा नाज़ था। वह कभी किसी उर्दू शायर से अपना मुकाबला न करते थे लेकिन अपने उर्दू कलाम को भी किसी के कलाम से नीचा न समझते थे। २५ वर्ष की आयु तक उनका झुकाव मुश्किल शायरी की ओर रहा लेकिन जब मिर्ज़ा को अपनी भूल का अनुभव हुआ तो वह उर्दू की ओर झुके। जिस उर्दू को वह अपनी शायरी के लिये अयोग्य समझते थे उसी उर्दू भाषा को उन्होंने अपनी शायरी का माध्यम बनाया। मिर्ज़ा ग़ालिब ने ऐसा क्यों किया? या, वह ऐसा करने के लिए क्यो मजबूर हुए? बात सरल सी है। मिर्ज़ा की प्रारम्भिक शिक्षा-दिक्षा उर्दू नहीं फ़ारसी में हुयी थी। फ़ारसी भाषा और साहित्य पर उन्हें पूरा अधिकार प्राप्त हो गया था। इसलिए वह फ़ारसी में शायरी करने में सरलता अनुभव करते थे। दूसरी बात यह थी कि मिर्ज़ा शब्दों और वाक्यों को बहुत महत्व देते थे। फ़ारसी के शब्दों और वाक्यों में जो प्रज्वालता थी, जो परिमार्जन था, जो अर्थ गाम्भीर्य था वह नवनिर्मित उर्दू भाषा में न था। फ़ारसी बन चुकी थी। उसका उत्कृष्ट रूप सामने आ चुका था। उर्दू का परिमार्जन हो रहा था, वह बन-संवर रही थी, उसका उत्कृष्ट रूप अभी सामने आने को था। तीसरी बात यह थी कि मिर्ज़ा अब तक अपनी जनता, अपने श्रोताओं तथा पाठकों से अधिक स्वयं अपने मानसिक और आध्यात्मिक संतोष के लिए प्रयत्न-

१—मीर तकी मीर। २—मिर्ज़ा सौदा।

शील थे। जब बाद के दिनों में उनकी चेतना बदली और वैचारिक परिपक्वता के साथ सामाजिक कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के प्रति उनकी जगरुकता बढ़ी तो उन्होंने उर्दू का माध्यम अपनाना शुरू किया और उनके द्वारा तिरस्कृता उर्दू उन्हीं के हाथों से सज-धज कर शोख, सुन्दर, आकर्षक, ओजपूर्ण, अति परिष्कृत और जानदार भाषा बन गयी। मिर्जा का सम्पर्क प्राप्त कर उर्दू भाषा और साहित्य का पुनर्जन्म सा हो गया।

गालिब की कलम में बड़ी तेजी है। उनका वार कभी चूकता नहीं। उनके कलाम की तेजी, नोकीलापन दिल तक सीधा उतर जाता है और दिल पर गहरा जख्म लग जाने के बाद हम यह अनुभव करते हैं कि जैसे कहीं कोई चीज हमारे दिल में चुभी है।

दिल में जख्म करने वाली कुछ पंक्तियाँ देखिए :

जानता हूँ सवाबे ताअतो जोहद
पर तबियत इधर नहीं आती

●

रोज पीता नहीं, पी लेता हूँ गाहे-गाहे
वह भी थोड़ी सी मजा मुँह का बदलने के लिए

गालिब की शायरी की यदि अच्छी तरह छानबीन की जाय तो स्पष्ट रूप से पता चलेगा कि गालिब ने कहीं कहीं अत्यधिक क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग क्यों किया, कहीं-कही फारसी की भरमार क्यों है और कहीं-कहीं ऐसी उपमाएँ क्यों हैं जिन्हें समझने में भी कठिनाई होती है।

एक बार जब हकीम आगा जान 'ऐश' ने झुँझला कर कह दिया :

अगर अपना कहा आप ही समझे तो क्या समझे
मजा कहने का जब है, एक कहे और दूसरा समझे।

तब शायर 'ऐश' की इस नादान हरकत पर गालिब नाराज हुए थे। मगर बाद में मुफ्ती सदरुद्दीन 'अजुर्दा' और फ़जल हक खैराबादी के समझाने-बुझाने के बाद उनका गुस्सा दूर हुआ और भारी भरकम शब्दों के प्रयोग से गालिब ने भरसक बचने की कोशिश की।

प्रारम्भ के पचीस वर्ष गालिब की गजलों में मुश्किल शब्दों की भरमार मिलती है। जैसे :

हर बुल हवस ने हुस्नपरस्ती शआर की
अब आबरूये शेवये अहले नज़र गई[1]

फिर अपने को आसान बनाने के प्रयत्न में गालिब ने जब आसान शायरी की ओर कदम उठाया और कठिन शब्दों को छोड़ा तब उन्हें कहना पड़ा :

जिन्दगी यूं भी गुज़र ही जाती
क्यों तेरा राह गुज़र याद आया

गालिब की उम्र का २५ से ५० साल तक का ज़माना ऐसा है, जिसमें गालिब की ज़बान बड़ी साफ हुई। वे जो भी कहते थे—हूबहू दिलों पर वैसी ही गुज़रती हुई मालूम होती है। इस कालखण्ड की शायरी में गहराई पैदा हो चली थी। जैसे :

हाँ वह नहीं वफ़ापरस्त जाओ वह बेवफ़ा सही
जिसको हो जानो दिल अज़ीज़ उसकी गली में जाये क्यों[2]

इसके बाद ग़ालिब की शायरी का वह दौर आया जो ग़ालिब को हजारों शायरों से बड़ा ही नहीं बना देता, उन्हें युग-बदलने वाले महाकवि के स्थान पर बैठा देता है। उनके 'मजरूह' और 'तुफ़्ता' जैसे दोस्त और शागिर्दों की एक पूरी पलटन उनके पीछे खड़ी नजर आती है जो उन्हें महान तो मानते ही थे, पूजते भी थे। यही नहीं पूरा दिल्ली शहर उनकी शायरी का ढिंढोरा पीटने लगता है। तत्कालीन मुगल सम्राट बहादुरशाह 'ज़फ़र' भी उन्हें प्रतिष्ठा से अपने दरबार में बुलाते हैं और उन्हें दौलत से मालामाल कर देते हैं।

मिर्ज़ा 'ग़ालिब' कई दृष्टियों से विद्रोही तथा स्वतन्त्र बुद्धि के कवि थे। उन्होंने ग़ज़ल की पुरानी सर्वस्वीकृत परम्परा को तोड़ा। उन्होंने मतला और मकता के बन्धनों से अपने को मुक्त किया। उन्होंने इसकी भी परवाह न की कि इनकी ग़ज़लों में कितने शेर हैं। जहाँ जैसा जब भी रुचा मिर्ज़ा ने कर लिया। उस समय ग़ज़लों को दीवान में शामिल करते समय काटने-छाटने या छोड़ देने की प्रथा न थी। शेरों को 'लख्ते-जिगर' कहा जाता था। भला कोई अपने कलेजे के टुकड़े को कैसे काट देता? मगर मिर्ज़ा अच्छे गुलदस्ते को सजाने के लिए खराब व सड़े-गले फूलों को उठा कर फेंक सकते थे।

---

(१) अर्थ—यदि सभी आदमी आशिक होने लगे तो सच्चे प्रेमियों की नज़रें बदनाम हो जाएँगी।

(२) अर्थ—महबूब नज़र फेरने ही वाला क्यों न हो, लेकिन वह मुझे दिल से प्यारा है। जिसको उसकी यह अदा भाती न हो वह मुहब्बत करना छोड़ दे।

मिर्ज़ा ने ऐसा करके अपूर्व हिम्मत का परिचय दिया। इसीलिए उनके दिवान में ओछे और कमजोर शेरों को खोज पाना मुश्किल है। मिर्ज़ा ने ग़जलों की विषय-वस्तु को भी बदल दिया। आशिक़-माशूकों के आपसी झगड़ों, गिला-शिकवों, विरह-वियोग के रोने-धोने की सीमा से हट कर मिर्ज़ा जीवन की गहराइयों में उतरे, तात्विक बातों की ओर दृष्टि डाली, मूलभूत संवेदनाओं को मुखर किया और आगे आने वाली पीढ़ी को नये भाव, नये विचार, नयी प्रेरणा और नयी दृष्टि दी। मिर्ज़ा ने उर्दू शब्दावली को नयी शोखी, चुलबुलापन, बाँकपन और पुष्टता प्रदान की। भाव-भाषा का ऐसा सुन्दर संगम अन्यत्र कहाँ मिलेगा ? मिर्ज़ा ने अपने माशूक को ईश्वरता प्रदान की। भारतेन्दु के "नखरा राह-राह को नीको" की गूँज इसीलिए हमें मिर्ज़ा ग़ालिब के शेरो में अक्सर यहाँ-वहाँ सुनायी दे जाती है।

मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपने साहित्य मे सामाजिक और राजनीतिक चेतना को उतनी प्रधानता न दी जितनी प्रधानता उन्होने व्यक्ति जनित पीड़ा, कुण्ठा, वेदना और सहानुभूति को दी। इसके अनेक कारण थे। मगर ग़ालिब पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि उनमें जातीय अथवा राष्ट्रीय स्वाभिमान की कमी थी या वह सामाजिक चेतना की उपेक्षा करते थे। हाँ, यह सही है कि उनकी संवेदना बहुत अंशो में व्यक्तिपरक थी समाजपरक नहीं। यही उनकी कमज़ोरी थी और शायद यही उनकी सबसे बड़ी शक्ति भी थी। सूरदास की "ऊधो मन नाही दस बीस" की भावधारा व्यक्तिपरक है परन्तु वह हमारे हृदय के मूल तारों की प्रतिध्वनि भी है। इसी तरह ग़ालिब की—

—इब्ने मरियम हुआ करे कोई, मेरे दुख की दवा करे कोई

उसी असीम वेदना और पीड़ा की परिचायक है जिसने गोपियों को ऊधो की ज्ञान चर्चा की उपेक्षा करने की शक्ति दी थी। मिर्ज़ा ग़ालिब के साहित्य में दार्शनिक अभिव्यक्तियों से अधिक यदि हमें संवेदनशीलता, सहानुभूति और दुख, कातरता मिलती है तो हमें इस पर संतोष करना चाहिए क्योंकि आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक कवि-परम्परा आँसुओं से भींगी चलती रही है, मात्र ज्ञान के प्रकाश में उसने अपना पंथ नहीं निहारा है।

'करुणा' मानव स्वभाव की मानवीयता की सबसे बड़ी कसौटी है और मिर्ज़ा ग़ालिब की 'करुणा' आज भी हमारी पलकों को भिगो देती है क्योंकि यह करुणा मिर्ज़ा ग़ालिब के हृदय की पुकार है, ऐसी पुकार जिसकी प्रति-ध्वनियाँ हृदय-हृदय में, कण्ठ-कण्ठ मे सुनायी देती हैं। इसी 'करुणा' के सहारे

मिर्जा ग़ालिब सचमुच लाजवाब शायर हो गये और महाकवि मीर की भविष्यवाणी सत्य साबित हुई।

ग़ालिब ने शायरी में सब से हट कर अपनी राह बनाई। ग़ालिब ने जो कहा आम लोगों से कोसों दूर हट कर। और शायरी मे गहराई पैदा करना तो उनकी अपनी खूबी थी। बड़ी आसानी से ऐसी बातें कह देते थे कि जिससे निगाहों के सामने वही नक्शा खिंच जाता था। जैसे :

नींद उसकी है, दिमाग उसका है, रात उसकी है
तेरी ज़ुल्फें जिसके बाज़ू पर परेशां हो गईं।

●

ज़िक्र उस परी वश का और फिर बयां अपना
बन गया रक़ीब आख़िर, था जो राज़दां अपना।

ग़ालिब के बारे में उनके समय के लोगों ने काफ़ी कुछ लिखा है। मौलाना हाली ने ग़ालिब के बारे में बहुत खोजबीन की है। उन्हीं की एकत्रित सामग्री के अनुसार ग़ालिब लगभग पचास वर्ष दिल्ली में ही रहे और दिल्ली छोड़ कर कही न गए। उनका अपना कोई मकान न था। जन्म भर किराए के मकान में ही रहे। दिल्ली में गली क़ासिम जान और फाटक हब्श खां, यही उनके रहने की जगहें कही जाती हैं।

ग़ालिब यद्यपि जीवन भर गरीब रहे पर थे वे शौकीन तबियत आदमी। अच्छे से अच्छे कपड़े पहनने और किताबें पढ़ने का उन्हें बड़ा शौक था।

ग़ालिब की कविता उनकी निर्धनता की देन थी। आगरे से दिल्ली आने पर आने वाले हर दिन उनके लिए और गरीब बन कर आते थे। कहाँ तो दिल्ली का अपना रंग, ससुराल का जीवन और गरीबी की मार, इस कशमकश में इनकी शायरी जन्म लेती।

बात यह थी कि पेन्शन के रुपये नियमपूर्वक नहीं मिलते थे। १८३९ में अलवर की पेंशन बन्द हो गई और गदर के पहले अंग्रेजो की। इसी बीच मिर्जा के छोटे भाई मिर्जा यूसुफ २८ साल की उम्र मे पागल हो गए। कहाँ तो ग़ालिब का शायराना दिल और कहाँ ये संसारी चोटें। पेंशन का झगड़ा सुलझाने की उन्होंने हरचन्द कोशिश की और विवश होकर गवर्नर की कौंसिल में अर्जी पेश करने कलकत्ते जाना पड़ा।

अगस्त १८५६ में दिल्ली से रवाना हुए और फरवरी १८५८ में कलकत्ता पहुँचे। इसी यात्रा में कानपुर, लखनऊ, बनारस, पटना और मुर्शिदाबाद में

भी कुछ दिनों ठहर कर साहित्यिक लोगों से मिलने का अवसर मिला।

कलकत्ते में हुक्म हुआ कि उन्हें पहले दिल्ली के रेज़ीडेन्ट के सामने अर्जी पेश करनी चाहिए। अब फिर कलकत्ते से दिल्ली वापिस आना होगा। उन्होंने निश्चय किया कि अब हिन्दुस्तान छोड़कर ईरान चले जायेंगे। इसी निराशा के साथ नवम्बर १८५९ में दिल्ली वापिस आये। वहाँ दोस्तों के समझाने पर इन्हें जिद हो गई और इन्होंने अपनी पेंशन के लिए मुक़दमा लड़ा जो १६ वर्ष तक चला। और मुकदमा लड़ने के लिए उन्होंने चालीस हजार रुपये कर्ज ले लिये और इसी दौरान में परेशानियों ने उन्हें पीने की आदत बहुत डाल दी थी। एक जगह ग़ालिब ने लिखा है—

कर्ज की पीते थे मै, और समझते थे कि हाँ
रंग लायेगी हमारी, फ़ाक़ामस्ती एक दिन

बाद में फैसला हुआ और ७५०) सालाना की पेंशन फिर चालू हो गई। लेकिन मुक़दमे के दौरान में हुए कर्ज के बदले में पाँच हज़ार मिले। कर्जदारों ने इन पर डिग्री करा ली थी और पाँच हजार रुपये तो वे बाँट ही आये थे और अब उनका घर से बाहर कदम रखना असम्भव हो गया था। क्योंकि उन दिनों यह कानून था कि यदि किसी सम्मानित व्यक्ति पर ऋण की डिग्री हो तो अदा न होने की हालत में उसे घर के बाहर ही गिरफ्तार किया जा सकता था, अतः बाहर की गिरफ्तारी से बचने के लिए मिर्जा ग़ालिब ने अपने को घर में कैद कर लिया।

यहाँ एक घटना का ज़िक्र कर देना ज़रूरी है कि १८४२ में दिल्ली के कालेज में फारसी अध्यापक की जगह पर काम करने को इन्हें बुलाया गया। मिर्ज़ा अपनी आदत के अनुसार चार कहारों वाली पालकी पर सवार होकर लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के घर पर पहुँचे और इन्तज़ार करते रहे। किसी ने जब उतरने को न कहा तो मिर्ज़ा ग़ालिब बोले—"जब तक कोई स्वागत को न आये तो कैसे उतरूँ ?" यह सुन कर लेफ्टीनेन्ट गवर्नर खुद बाहर आये और बोले—"आप रस्मी मुलाकात के लिए नहीं नौकरी के लिए आये हैं इसीलिये कोई स्वागत को कैसे आता ?" क्षण भर सोच कर मिर्ज़ा ने कहा, "नौकरी तो इस-लिये करना चाहता हूँ कि मेरी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो, अगर नौकरी करने से मौजूदा प्रतिष्ठा में भी कमी आती है तो ऐसी नौकरी को मेरा दूर से सलाम" और कहारों को वापिस चलने का हुक्म दे दिया।

एक और घटना। हैदराबाद से इनके दोस्त ने लिखा कि दक्षिण में सोना बरस रहा है। यदि हैदराबाद आओ तो महाराज चन्दुलाल से काफी धन

मिला सकता है। इस पर मिर्ज़ा ने जवाब दिया "भाई सुझाव तो ठीक है पर खतरे बहुत हैं। एक तो यहाँ कर्ज़ अदा किये बिना घर से निकलना मुश्किल है दूसरे गरीब चन्दूलाल, अस्सी बरस का बुड्ढा खुद कब्र में पाँव लटकाये बैठा है। जब तक मैं हैदराबाद पहुँचूँ तब तक वह कहीं खुद अहदाबाद पहुँच चुका होगा तो क्या होगा।''

मिर्ज़ा के जीवनी लेखकों में कुछ ने लिखा है कि मिर्ज़ा को जुआ खेलने के कारण दो बार जेल भुगतनी पड़ी थी पर इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

मिर्ज़ा ग़ालिब ने मुगल सल्तनत के आखिरी बादशाह की बरबादी अपनी आँखों से देखा था। धीरे-धीरे अंग्रेजी सरकार का कब्जा दिल्ली से आगे आगरा तक हो गया। दिल्ली ऐसी लुटी जैसे भारतवासियों के अपने दिल लुट गए। हर ओर बरबादी ही बरबादी, खून ही खून। तबाही की ऐसी स्थिति कि लोगों की जायदादें जब्त हो गईं। फिर फौजी लूट-पाट में जनता का रहा सहा माल भी लुटा, बरबाद हुआ। ग़ालिब भी इस मुसीबत से छूट नहीं सके। दिल्ली के ग़म में इस क़दर रोए जैसे कोई अपनी संतान की मौत पर गम में डूब कर चीखता है। दिल्ली की बरबादी पर उनका एक शेर यह है :

> चप्पे चप्पे में हैं याँ गौहरे यकता तहे खाक
> दफ्न होगा न कहीं इतना खजाना हरगिज़

अंग्रेजों द्वारा हिन्दुस्तान पर गुलामी लादे जाने पर मिर्ज़ा के दिल पर बड़ी ठेस लगी थी। जब लार्ड लेक की फौजें दिल्ली में घुसीं तो अपनी सल्तनत पर गैर का अधिकार होते देख ग़ालिब का दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया था। उनके दिल के सभी घाव एक बार फिर दहकने लगे। न रोते बनता था न हँसते। वे एक अजीब सी विवशता और घुटन का अनुभव कर रहे थे।

दिल्ली की बरबादी के दृश्यों को देख कर ग़ालिब के दिल पर जो जख्म हुआ, वह कभी न भर सका। हाँ, इससे शायरी को एक लाभ जरूर हुआ कि गम की चोटें सहते-सहते ग़ालिब की शायरी में एक अनूठी चमक-दमक पैदा हो गई।

तभी ग़ालिब ने कहा था :

> दिल ही तो है न संगो-खिश्त दर्द से भर न आए क्यों
> रोयेंगे हम हजार बार कोई हमें रुलाये क्यों........

इन दिनों ग़म में ही ग़ालिब डूबे रहते। ग़म ही उनके लिए ओढ़ना बिछौना बन गया। लेकिन ग़ालिब ग़म में डूबकर भी ग़म से दबे नहीं न हार मानी बल्कि उसके परिणाम-की प्रतीक्षा करते रहे और फिर....

रंज से ख़ूगर हुआ इन्सां तो मिट जाता है रंज
मुश्किलें इतनी पड़ीं हम पर कि आसां हो गईं

इसी समय महाकवि जौक का देहान्त हो गया और मिर्ज़ा को बादशाह जफ़र ने अपना उस्ताद मान लिया। और नवाब वाजिद अली शाह ने भी ५००) सालाना पेंशन बाँध दी। जौक के न रहने पर बादशाह ज़फ़र बहुत परेशान हुए थे। उन्होंने चारों ओर निगाह दौड़ाई पर कोई बड़ा शायर नजर न आया। तब किसी ने सुझाया—'और हुज़ूर गालिब !' तब बादशाह खिल उठे और बोले—"बहुत बड़ी चूक कर बैठा था। शमा बगल में थी और मैं उजाले के लिए चारों तरफ फिर रहा था।"

बादशाह ज़फ़र ने गालिब से यह भी कहा था कि वह अगर तैमूरिया ख़ानदान का इतिहास लिखें तो बादशाह उन्हें पचास रुपये माहवार अलग से देंगे। उनके कहने पर हकीम एहसान उल्ला खाँ से सही बातें पूछ कर और दूसरे तरीकों से मसाला जुटा कर गालिब ने तैमूरिया इतिहास का एक हिस्सा पूरा भी किया जिसमें सिर्फ तैमूर बादशाह से हुमायूँ तक का इतिहास था। उसका नाम 'महरे नीम रोज़' रखा। इसके बाद वे दूसरा भाग लिखने की तैयारी ही कर रहे थे कि—होते न होते मई ५७ में गदर शुरू हो गया और सब कुछ उथल-पुथल हो गया। बादशाह ज़फर भी रंगून भेज दिये गये। ये दिन मिर्ज़ा ने जिस कठिनाई से गुजारे अन्दाज भी नहीं किया जा सकता। इसके बाद मृत्यु तक मिर्ज़ा पैसों की भूख में तड़पते रहे। अपने इस समय की हालत का ज़िक्र मिर्ज़ा ने अपनी किताब 'दस्तंबो' में किया है। आर्थिक कठिनाई से शरीर भी तो टूट जाता है। तरह-तरह की बीमारियों ने इन्हें घेर लिया। १८५९ में पेट में मरोड़ होने वाले दौरे ने उन्हें तोड़ दिया। १८६२-६३ में इनका शरीर फोड़ों से भर गया और शरीर का सारा रक्त मवाद बन चुका था। आखिरी दिनों में ये चलने-फिरने से भी मजबूर हो गये थे। कान के बहरे हो गये थे। आँख की रोशनी चली गई। हाथ और ज़बान भी बेकार हो गये थे। अन्त में १५ फरवरी १८६९ के दिन दिमाग पर फालिज गिरा और गालिब दुनिया से उठ गये।

"हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी,
कुछ हमारी खबर नहीं आती"

मिर्ज़ा के सात बच्चे हुए थे लेकिन कोई भी पन्द्रह महीने से ज्यादा नहीं जिया। मिर्ज़ा की मृत्यु के एक साल बाद उनकी पत्नी का भी देहांत हो गया। मिर्ज़ा की कोई सही तस्वीर नहीं मिलती लेकिन जो कुछ है उससे मिर्ज़ा की

यह तस्वीर बनती है लम्बा कद सुडौल व इकहरा बदन चौडा सीना ऊंचा माथा, उठी नाक, बड़ी-बड़ी बादामी आँखें जिनमें हर वक्त शराब का नशा होता, करीने से कटी-छटी दाढ़ी जो बहुत बड़ी नहीं।

जीवन भर घोर कष्ट उठाने के बाद भी ग़ालिब ने अपने चरित्र में एक प्रकार की मस्ती को सदा बचा कर रखा था। उनके सम्बन्ध में बहुत से चुटकुले प्रसिद्ध हैं जो उनकी मजेदार तबियत का सुबूत है।

कुछ किस्से ये हैं—

एक बार जाड़े के दिनों में तोते का पिंजरा ग़ालिब के सामने ही रखा था। तोता सर्दी के मारे परों में मुँह छिपाए बैठा था। मिर्ज़ा ने देखा तो कह उठे—"मियाँ मिट्ठू ? न तुम्हारे जोरू न बच्चे ! तुम भला किस फ़िक्र में यो सिर झुकाए बैठे हो ?"

●

एक बार बादशाह बहादुरशाह आमों के मौसम में कुछ दोस्तों के साथ जिनमें ग़ालिब भी थे, टहल रहे थे। महताब बाग में तरह-तरह के आम के पेड थे। यहाँ का आम बादशाह और बेगम के अलावा किसी को खाने की इजाजत न थी। मिर्ज़ा ग़ालिब की कमजोरी थे—आम। मिर्ज़ा बार-बार आमों की ओर देखते और चुप रह जाते। यह देख कर बादशाह ने पूछा—"मिर्ज़ा इस क़दर गौर से क्या देखते हो ?" मिर्ज़ा ने हाथ बाँध कर कहा—"देखता हूँ हुजूर कि क्या इन पर कहीं मेरा भी नाम लिखा है ?" बादशाह समझ गए और उसी दिन एक टोकरी आम उनके घर भिजवा दिया गया।

●

एक दिन की बात है कि रोजे का महीना खत्म हुआ तो ग़ालिब किले में गए। बादशाह ने पूछा—"मिर्ज़ा तुमने कितने रोजे रखे।" ग़ालिब ने जवाब दिया—"पीर मुर्शिद—एक नहीं रखा।"

●

एक दिन ग़ालिब किसी के यहाँ मिलने गए। फिर वहाँ से मुस्तफ़ा खाँ 'शेफता' के घर आए। नवाब साहब ने कहा—"आप मकान से सीधे यहीं आते हैं या कहीं और भी जाना हुआ था ?" मिर्ज़ा ने कहा—"मुझको उनका एक आना देना था, पहले वहाँ गया था, वहाँ से यहाँ आया हूँ।"

●

दिल्ली में रथ को कुछ लोग पुलिंग मानते और कुछ लोग स्त्रीलिंग। एक साहब ने ग़ालिब से पूछा—"मिर्ज़ा जी यह तो बताइए, यह रथ आखिर पुलिंग

है या स्त्रीलिंग ? मिर्जा ने हँसते हुए कहा—"जिस रथ पर औरतें बैठी हों वह स्त्रीलिंग और जिस पर मर्द बैठे हों वह पुलिंग।"

●

जब मिर्जा ग़ालिब कर्नल ब्राउन के सामने लाए गए तो उस समय वे अजीब कपड़े पहने थे। कर्नल ने मिर्जा को देखकर पूछा—"वेल तुम मुसलमान हो ?" मिर्जा ने कहा—"आधा।" कर्नल ने पूछा—"इसका मतलब ?" मिर्जा ने कहा—"शराब पीता हूँ। सुअर नहीं खाता।"

●

जब मिर्जा क़ैद से छूट कर आए तो अपने दोस्त नसीर उद्दीन उर्फ काले मियाँ के यहाँ आकर रहे। एक दिन का जिक्र है कि वह काले मियाँ के पास बैठे थे। किसी ने आकर ग़ालिब को क़ैद से छूटने की मुबारकबादी दी। उत्तर में मिर्जा ने कहा—"कौन भड़वा कहता है कि मैं क़ैद से छूटा हूँ। पहले गोरों की क़ैद में था, अब काले की क़ैद में हूँ।"

●

ग़दर के समय मिर्जा की पेंशन बंद हो गई। उस समय एक साहब मिलने आए। जब पेंशन का जिक्र चला तो ग़ालिब ने कहा—"तमाम उम्र एक दिन भी शराब न पी हो तो काफ़िर और एक बार नमाज न पढ़ी हो तो गुनहगार। फिर नहीं जानता कि सरकार ने किस तरह मुझे बाग़ी मुसलमानों में गिन लिया।"

●

एक समय ग़ालिब अपने शागिर्दों से घिरे बैठे थे। शागिर्द मीर मेहदी उस्ताद ग़ालिब के पैर दबाने लगे। ग़ालिब ने रोका, मगर वे न माने और कहा कि अगर आप को बुरा लगे तो इसकी मजदूरी दे दीजिएगा। जब मेहदी पैर दबा चुके तो कहा—"लाइए उस्ताद, मजदूरी।" मिर्जा ने कहा—"तुमने हमारे पैर दाबे और हमने तुम्हारी मजदूरी दाबी।"

●

शायरी के अलावा मिर्जा खत लिखने में बहुत प्रसिद्ध थे।

अपने परेशान दिनों की तस्वीर ग़ालिब ने अपने खतों में पूरी तरह खींची है। अपने दोस्त मिर्जा तुफ़्ता को एक खत में ग़ालिब ने लिखा था जब वे बेतरह परेशान थी। लेकिन क्या मजाल कि परेशानी चेहरे पर दिखाई पड़ जाय। उन्होंने लिखा :

मुझको देखो न आजाद हूँ न क़ैद न-परेशान हूँ न तन्दुरुस्त न

खुश हूँ न नाखुश, न मुर्दा हूँ, न जिन्दा जिये जाता हूँ, बातें किये जाता हूँ। रोटी रोज खाता हूँ, शराब कभी-कभी पीता हूँ। जब मौत आयेगी मर रहूँगा। न शुक्र है न शिकायत, जो बात है वह सच।''

गालिब न कभी अपनी परेशानी में हारते थे न दूसरों को हारता देखना चाहते थे। वे दूसरों से भी आशा रखते थे कि लोग अपने चेहरों पर गम की लकीरों को न उभरने दें।

स्वाभिमानी स्वभाव के कारण गालिब ने जिन्दगी भर कष्ट उठाया। मरने के पहले गालिब ने अपने सभी कलाम खुद पढ़े और करीब दो हजार शेर अपने सामने छाँट दिये जो अब मिलते भी नहीं और अपने चुने हुए शेरों का यह छोटा-सा दीवान दुनिया को पढ़ने के लिए छोड़ गये।

—ओंकार शरद

अनुक्रम

● शेर

२३   एतबार इश्क़ का खाना खराबा देखना
२४   जब बतकरीबे-सफ़र यार ने महमिल बाधा
२५   मैं और बज्मे मय से यूँ तिशना-काम आऊँ
२६ : घर हमारा जो न रोते तो भी वीरां होता
२७ : न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता
२८ : बुल बुल के कारबार में हैं खन्दाहाय-गुल
२९ : शहे असबाबे-गिरफ्तारिये-खातिर मत पूछ
३० : हुई ताखीर तो कुछ बाइसे-ताखीर भी था
३१ : लबे खुश्क दर-तश्नगी मुर्दगां का
३२ : फिर मुझे दीदए-तर याद आया
३३ : तू दोस्त किसी का भी सितमगर न हुआ था
३४ : आईना देख अपना सा मुँह लेके रह गये
३५ : अर्ज़े-नियाज़े इश्क़ के क़ाबिल नहीं रहा
३६ : इश्क़ कहता है कि उसका गैर से इखलाश हैफ
३७ : ज़िक्र उस परीवश का और फिर बयाँ अपना
३८ : सुर्मए मुफ़्त-नज़र हूँ मेरी कीमत यह है
३९ : ग़ाफ़िल, ब वहमे-नाज़ खुद आरा है वरना याँ
४० : लताफ़त बे-कसाफ़त जल्वा पैदा कर नहीं सकती
४१ : अफ़सोस कि दन्दां का किया रिज़्क़ फ़लक ने
४२ : जोर से बाज आए पर बाज आएं क्या
४३ : इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना
४४ : फिर हुआ वक़्त कि हो बाल कुशा मौजे शराब
४५ : रहा गर कोई तो क़यामत, सलामत
४६ : गुलशन में बन्दोबस्त बरंगे-दिगर है आज
४७ : लो हम मरीज़े-इश्क़ के तीमारदार हैं
४८ : नफ़स न अंजुमने-आरज़ू से बाहर खेंच
४९ : मुँद जाईं खोलते ही खोलते आँखें ग़ालिब
५० : हुस्न ग़मज़ा की कशाकश से छुटा मेरे बाद
५१ : घर जब बना लिया दर पर कहे बगैर
५२ : क्यों जल गया न ताबे-रुखे-यार देखकर
५३ : है बस कि हर एक उनके इशारे मे निशां और
५४ : 'असद' बिस्मिल है किस अन्दाज का क़ातिल से कहता

गु चए-नाशगुफ्ता को दूर से मत दिखा कि यूँ
घोता हूँ जब मैं पीने को उस सीमतन के पाव
वा उनको होले दिल है तो या मैं हूँ शर्मसार
: लखनऊ आने का बाइस नहीं खुलता
: वारस्ता इससे हैं कि मुहब्बत ही क्यों न हो
: तुम जानो तुमको ग़ैर से जो रस्म-ओ राह हो
: गई वो बात कि हो गुफ़्तगू तो क्योंकर हो
: किसी को देके दिल कोई नावा संजे-फ़ुगां क्यों हो
: रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो
: है सब्जा जार हर दर-ओ-दीवारे ग़मकदा
: तोड़ बैठे जब कि हम जाम-ओ-सबू फिर हमको क्या
: मैं हूँ मुश्ताक़े जफ़ा मुझ पै जफ़ा और सही
. मसजिद के ज़ेरे-साया खराबात चाहिये
: रहे उसे शोख से आजुर्दा हम चन्दे तकल्लुफ़ से
: रंज ताक़त से सिवा हो तो नबेटूँ क्योंकर
: ता हम को शिकायत की भी बाकी न रहे तो
: घर में था क्या जो तेरा ग़म उसे गारत करता
: ग़मे-दुनिया से गर पाई भी फ़ुरसत सर उठाने की
: दर्द से मेरे है तुझको बेक़रारी हाय-हाय
: इश्क मुझको नहीं वहशत ही सही
: ढूँढ़े है उस मुग़न्निये आतिश-नफ़स को जी
: उसे बज़्म में मुझे नहीं बनती हया किये
: ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्ल से गुजरी ग़ालिब
: देखना क़िस्मत कि आप अपने पै रश्क आ जाय है
उग रहा है दर-ओ-दीवार से सब्ज़ा 'ग़ालिब'
: सादगी पर उसकी मर जाने की हसरत दिल मे है
दन से तेरी निगाह जिगर तक उतर गई
: तसकीं को हम न रोएँ जो ज़ौक़े नज़र मिले
: कोई दिन गर ज़िन्दगानी और है
: कोई उम्मीद बर नहीं आती
: दिले-नादां तुझे हुआ क्या है
: न हुई गर मेरे मरने से तसल्ली न सही

कोई उम्मीद बर नहीं आती,
कोई सूरत नज़र नहीं आती।

●

आगे आती थी हाले दिल प हँसी,
अब किसी बात पर नहीं आती।

●

है कुछ ऐसी ही बात, जो चुप हूँ,
वर्ना क्या बात कर नहीं आती।

●

हम वहाँ है, जहाँ से हमको भी,
कुछ हमारी खबर नहीं आती।

●

—ग़ालिब

:: १ ::

कहते हो 'न देंगे हम, दिल अगर पड़ा पाया'
दिल कहाँ कि गुम कीजे ? हमने मुद्दआ[1] पाया।

इश्क़ से, तबीयत ने, जीस्त[2] का मज़ा पाया
दर्द की दवा पाई; दर्द बेदवा पाया।

दोस्तदारे-दुश्मन[3] है, एतमादे-दिल[4] मालूम
आह बेअसर देखी, नाला[5] नारसा[6] पाया।

सादगी व पुरकारी,[7] बेखुदी[8] व हुशियारी
हुस्न को तग़ाफ़ुल[9] में, जुरअत-आज़मा[10] पाया।

ग़ुंचा[11] फिर लगा खिलने, आज हमने अपना दिल
ख़ूँ किया हुआ देखा, गुम किया हुआ पाया।

हाले-दिल नहीं मालूम, लेकिन इस क़दर यानी
हमने बारहा ढूँढा, तुमने बारहा पाया।

शोरे पन्दे-नासेहने[12] ज़ख्म पर नमक छिड़का
आपसे कोई पूछे 'तुमने क्या मज़ा पाया।'

१—अभिप्राय। २—जीवन। ३—दुश्मन का दोस्त। ४—दिल का विश्वास। ५—रुदन। ६—पहुंच से बाहर। ७—चालाकी। ८—आत्मविस्मृति। ९—उपेक्षा। १०—साहस की परीक्षा लेने वाला। ११—कली। १२—उपदेशक के उपदेश के शोर ने।

:: १ ::

कहते हो 'न देंगे हम, दिल अगर पड़ा पाया'
दिल कहाँ कि गुम कीजे ? हमने मुद्दआ[1] पाया।

इश्क़ से, तबीयत ने, ज़ीस्त[2] का मज़ा पाया
दर्द की दवा पाई; दर्द बेदवा पाया।

दोस्तदारे-दुश्मन[3] है, एतमादे-दिल[4] मालूम
आह बेअसर देखी, नाला[5] नारसा[6] पाया।

सादगी व पुरकारी,[7] बेख़ुदी[8] व हुशियारी
हुस्न को तग़ाफ़ुल[9] में, जुरअत-आज़मा[10] पाया।

ग़ुंचा[11] फिर लगा खिलने, आज हमने अपना दिल
ख़ूँ किया हुआ देखा, गुम किया हुआ पाया।

हाले-दिल नहीं मालूम, लेकिन इस क़दर यानी
हमने बारहा ढूँढा, तुमने बारहा पाया।

शोरे पन्दे-नासेहने[12] ज़ख़्म पर नमक छिड़का
आपसे कोई पूछे 'तुमने क्या मज़ा पाया।'

१—अभिप्राय। २—जीवन। ३—दुश्मन का दोस्त। ४—दिल विश्वास। ५—रुदन। ६—पहुँच से बाहर। ७—चालाकी। ९ उपेक्षा १० की परीक्षा लेने वा ११—कली १२ उपदेशक के उपदेश के शोर ने

:: २ ::

दिल मेरा सोज़े-निहाँ[1] से बेमहाबा[2] जल गया
आतिशे-खामोश[3] की मानिन्द गोया जल गया।
दिल में ज़ौक़े-वस्ल-ओ-यादे-यार तक बाक़ी नहीं[4]
आग इस घर में लगी ऐसी, कि जो था, जल गया।
मैं अदम[5] से भी परे हूँ वरना ग़ाफ़िल बारहा
मेरी आहे-आतशीं से[6] बाले-उनक़ा[7] जल गया।
अर्ज़ कीजे, जौहरे-अन्देशा[8] की गर्मी कहाँ
कुछ खयाल आया था वहशत[9] का कि सहरा जल गया।
दिल नहीं तुमको दिखाता वरना दाग़ों की बहार
इस चराग़ाँ[10] का करूँ क्या कारफ़रमा[11] जल गया।
मैं हूँ और अफ्सुर्दगी[12] की आरज़ू 'ग़ालिब' कि दिल!
देख कर तर्ज़े-तपाके-अहले-दुनिया[13] जल गया।

:: ३ ::

शौक़ हर रंग, रक़ीबे-सर-ओ-सामाँ[14] निकला
क़ैस तस्वीर के पर्दे में भी उरियाँ[15] निकला।

१—आन्तरिक गर्मी, तपन। २—एकदम। ३—मौन अग्नि। ४—दिल में प्रिय की याद और मिलने की इच्छा तक बाक़ी नहीं रही। ५—न होने, अर्थात् मुर्दों से भी गया बीता हूँ। ६—गर्म आह। ७—उनक़ा एक काल्पनिक पक्षी का पंख या पर। उर्दू कविता में जब कोई चीज़ मिट कर अस्तित्व हीन हो जाती है तो उसकी उपमा उनक़ा पक्षी से दी जाती है। ८—विचार का जौहर या सार। ९—पागलपन। १०—दीपमाला। ११—काम करने वाला, प्रेरक। १२—उदासी। १३—दुनिया वालों की उपेक्षा देख कर। १४—सरोसामान का दुश्मन। १५—नग्न।

:: ५ ::

दह्र[1] में नक़्शे-वफ़ा[2] वजहे-तसल्ली[3] न हुआ
है ये वो लफ़्ज़[4] कि शर्मिन्दए-मअनी[5] न हुआ।

सब्ज़ए-ख़त[6] से तेरा काकुले-सरकश[7] न दबा
यह ज़मुर्रद[8] भी हरीफ़े-दमे-अफ़ई[9] न हुआ।

मैंने चाहा था कि अन्दोहे-वफ़ा[10] से छूटूँ
वो सितमगर मेरे मरने पै भी राज़ी न हुआ।

किस से महरूमिये-क़िस्मत की[11] शिकायत कीजे
हमने चाहा था कि मर जायँ, सो वो भी न हुआ।

मर गया सदमए-यक-जुम्बिशे-लब[12] से 'ग़ालिब'
नातवानी से हरीफ़े-दमे-ईसा न[13] हुआ।

१—दुनिया। २—वफ़ा की छाप। ३—सांत्वना का कारण। ४—शब्द। ५—जिसको अपने अर्थ से कभी शर्म न आई। ६—चेहरे पर बाल आ जाने से। ७—उद्दण्ड केश। ८—हीरा। ९—उड़ता साँप। कहते हैं कि साँप हीरे-जवाहरात के सामने अंधा हो जाता है पर तेरे केश खत के सब्जे के सामने भी न दबे। १०—वफ़ा अर्थात् प्रेम निभाने मे जो कष्ट होते है। ११—भाग्यहीनता। १२—अधरों के हिलाने की चोट। १३—ईसा के मंत्रों को फूंक का मुकाबिला यानी सहन कर सकता। शायर प्रिय के वियोग मे इतना कृश-गात है कि ईसा ने ज्यों ही मंत्र फूंक कर उसे स्वस्थ करने के लिए अपने अधरों को हिलाया, कि उसके हिलने के धक्के से वह मर गया और इस प्रकार ईसा के मंत्रों की फूंक अपनी कृशता के कारण न सह सका।

:: ६ ::

धमकी में मर गया, जो न बावें-नवर्द[1] था
इश्के नबर्द पेशा[2] तलबगार मर्द[3] था।

था जिन्दगी मर्ग[4] का खटका लगा हुआ
उड़ने से पेशतर भी मेरा रंग ज़र्द था।

तालीफ़-नुस्खा-हाए-वफ़ा[5] कर रहा था मैं
मजमूअए-ख्याल[6] अभी फ़र्द-फ़र्द[7] था।

दिल ता जिगर, कि साहिले-दरियाए-खूं[8] है अब
इस रहगुजर में जल्वए-गुल आगे गर्द था।

जाती है कोई ? कशमकश अन्दोहे-इश्क[9] की
दिल भी अगर गया, तो वही दिल का दर्द था।

अहबाब[10] चारा-साज़िए-वहशत[11] न कर सके
ज़िन्दां में भी ख़याल, बयाबां-नवर्द[12] था।

यह लाशे बेकफ़न 'असदे' ख़स्ता जां[13] की है
हक़ मग़फिरत[14] करे अजब आज़ाद मर्द था !

१—अजेय। २—इश्क जिसे लड़ाइयों और परेशानियों में आनन्द मिले। ३—बहादुर का प्रेमी। ४—मृत्यु। ५—इश्क की पुस्तक की रचना। ६—कल्पना का संकलन। ७—बिखरा हुआ। ८—खून की नदी का किनारा। ९—इश्क की वेदना। १०—मित्र। ११—उन्माद का इलाज। १२—जंगल में घूमना। १३—ग़ालिब की थकी हुई जान। १४—मोक्ष मुक्ति।

२

दिल मेरा सोज़े-निहाँ[1] से बेमहाबा[2] जल गया
आतिशे-खामोश[3] की मानिन्द गोया जल गया।
दिल में ज़ौक़े-वस्ल-ओ-यादे-यार तक बाक़ी नहीं[4]
आग इस घर में लगी ऐसी, कि जो था, जल गया।
मैं अदम[5] से भी परे हूँ वरना ग़ाफ़िल बारहा
मेरी आहे-आतशीं से[6] बाले-उनक़ा[7] जल गया।
अर्ज़ कीजे, जौहरे-अन्देशा[8] की गर्मी कहाँ
कुछ खयाल आया था वहशत[9] का कि सहरा जल गया।
दिल नहीं तुमको दिखाता वरना दाग़ों की बहार
इस चराग़ाँ[10] का करूँ क्या कारफ़रमा[11] जल गया।
मैं हूँ और अफ़सुर्दगी[12] की आरज़ू 'ग़ालिब' कि दिल!
देख कर तर्ज़े-तपाके-अहले-दुनिया[13] जल गया।

:: ३ ::

शौक़ हर रंग, रक़ीबे-सर-ओ-सामाँ[14] निकला
क़ैस तस्वीर के पर्दे में भी उरियाँ[15] निकला।

१—आन्तरिक गर्मी, तपन। २—एकदम। ३—मौन अग्नि। ४—दिल में प्रिय की याद और मिलने की इच्छा तक बाकी नहीं रही। ५—न होने, अर्थात् मुर्दों से भी गया बीता हूँ। ६—गर्म आह। ७—उनक़ा एक काल्पनिक पक्षी का पंख या पर। उर्दू कविता में जब कोई चीज मिट कर अस्तित्व हीन हो जाती है तो उसकी उपमा उनका पक्षी से दी जाती है। ८—विचार का जौहर या सार। ९—पागलपन। १०—दीपमाला। ११—काम करने वाला, प्रेरक। १२—उदासी। १३—दुनिया वालों की उपेक्षा देख कर। १४—सरोसामान का दुश्मन। १५—नग्न।

ज़ख़्म ने दाद न दी तंगियें-दिल की यारब
तीर भी सीनए-बिस्मिल[1] से पर-अफ़शाँ[2] निकला।
बूए-गुल[3], नालए-दिल[4], दूदे-चराग़े-महफ़िल[5]
जो तेरी बज़्म[6] से निकला सो परीशाँ निकला।
थी नौ-आमोज़े फ़ना हिम्मत-दुश्वार पसन्द[7]
सख़्त मुश्किल है कि यह काम भी आसाँ निकला।
दिल में फिर गिरिया[8] ने एक शोर उठाया 'ग़ालिब'
आह जो क़तरा न निकला था, सो तूफ़ाँ निकला।

:: ४ ::

था ज़िन्दगी में मर्ग का खटका लगा हुआ
उड़ने से पेशतर भी मेरा रंग ज़र्द था।
जाती है कोई कशमकश[9] अन्दोहे-इश्क़[10] की
दिल भी अगर गया तो वही दिल का दर्द था।
अहबाब[11] चारासाज़िये-वहशत[12] न कर सके
ज़िन्दाँ[13] में भी ख़याले-बयाबाँ-नवर्द था[14]।
यह लाशे-बे-कफ़न 'असदे-'ख़स्ता जाँ[15] की है
हक़ मग़फ़रत करे, अजब आज़ाद मर्द था।

१—घायल की छाती। २—पर खोले हुए। ३—फूल की सुगंध। ४—हृदय का रुदन। ५—महफ़िल के चिराग़ का धुआँ। ६—महफ़िल। ७—फ़ना-मृत्यु, नौ आमोज़ = नया विद्यार्थी। दुश्वार-पसन्द = कठिनाइयों को पसन्द करने वाली। यानी कठिनाइयों को पसन्द करने वाली मेरी हिम्मत ने इश्क़ की राह को, जो मृत्यु की तरह भयानक होती है, एक नौसिखिये की भाँति बिना उससे भयभीत हुए ही पार कर लिया। ८—रुदन। ९—खींचतान। १०—प्रेम के दुःख। ११—मित्रगण। १२—पागलपन का इलाज। १३—कारागार। १४—जंगल में घूमने का विचार। १५—दुखी, थके हुए। १६—हक़ = ईश्वर, मग़फ़रत करे = बख़्श दे, क्षमा करे।

५

दह्र[1] में नक़्शे-वफ़ा[2] वजहे-तसल्ली[3] न हुआ
है ये वो लफ़्ज़[4] कि शर्मिन्दए-मअनी[5] न हुआ।

सब्ज़ए-ख़त[6] से तेरा काकुले-सरकश[7] न दबा
यह ज़मुर्रद[8] भी हरीफ़े-दमे-अफ़ई[9] न हुआ।

मैंने चाहा था कि अन्दोहे-वफ़ा[10] से छूटूँ
वो सितमगर मेरे मरने पै भी राज़ी न हुआ।

किस से महरूमिये-क़िस्मत की[11] शिकायत कीजे
हमने चाहा था कि मर जायँ, सो वो भी न हुआ।

मर गया सदमए-यक-जुम्बिशे-लब[12] से 'ग़ालिब'
नातवानी से हरीफ़े-दमे-ईसा न[13] हुआ।

१—दुनिया। २—वफ़ा की छाप। ३—सांत्वना का कारण। ४—शब्द। ५—जिसको अपने अर्थ से कभी शर्म न आई। ६—चेहरे पर बाल आ जाने से। ७—उद्दण्ड केश। ८—हीरा। ९—डसला साँप। कहते हैं कि साँप हीरे-जवाहरात के सामने अंधा हो जाता है पर तेरे केश खत के सब्ज़े के सामने भी न दबे। १०—वफ़ा अर्थात् प्रेम निभाने में जो कष्ट होते हैं। ११—भाग्यहीनता। १२—अधरों के हिलाने की चोट। १३—ईसा के मंत्रों को फूँक का मुक़ाबिला यानी सहन कर सकता। शायर प्रिय के वियोग में इतना कृश-गात है कि ईसा ने ज्यों ही मंत्र फूँक कर उसे स्वस्थ करने के लिए अपने अधरों को हिलाया, कि उसके हिलने के धक्के से वह मर गया और इस प्रकार ईसा के मंत्रों की फूँक अपनी कृशता के कारण न सह सका।

:: ६ ::

धमकी में मर गया, जो न बाबे-नबर्द[1] था
इश्के नबर्द पेशा[2] तलबगार मर्द[3] था।

था ज़िन्दगी मर्ग[4] का खटका लगा हुआ
उड़ने से पेशतर भी मेरा रंग ज़र्द था।

तालीफ़-नुस्ख़ा-हाए-वफ़ा[5] कर रहा था मैं
मजमुअए-ख़याल[6] अभी फ़र्द-फ़र्द[7] था।

दिल ता जिगर, कि साहिले-दरियाए-ख़ूं[8] है अब
इस रहगुज़र में जल्वए-गुल आगे गर्द था।

जाती है कोई? कशमकश अन्दोहे-इश्क[9] की
दिल भी अगर गया, तो वही दिल का दर्द था।

अहबाब[10] चारा-साज़िए-वहशत[11] न कर सके
ज़िन्दा में भी ख़याल, बयाबां-नबर्द[12] था।

यह लाशे बेकफ़न 'असदे' ख़स्ता जां[13] की है
हक़ मग़फ़िरत[14] करे अजब आज़ाद मर्द था!

१—अजेय। २—इश्क जिसे लड़ाइयों और परेशानियों में आनन्द मिले। ३—बहादुर का प्रेमी। ४—मृत्यु। ५—इश्क की पुस्तक की रचना। ६—कल्पना का संकलन। ७—बिखरा हुआ। ८—ख़ून की नदी का किनारा। ९—इश्क की वेदना। १०—मित्र। ११—उन्माद का इलाज। १२—जंगल में घूमना। १३—ग़ालिब की थकी हुई जान। १४—मोक्ष, मुक्ति।

७

न होगा यक बयाबाँ[1] मान्दगी[2] से जौक कम मेरा
हबाबे-मौज-ए-रफ़्तार[3] है नक्शे-कदम[4] मेरा।

मुहब्बत थी चमन से लेकिन अब यह बेदिमागी है
कि मौजे-बूए-गुल[5] से नाक में आता है दम मेरा।

:: ८ ::

सरापा[6] रहने-इश्क़ो[7] नागुजीरे-उल्फ़ते-हस्ती[8]
इबादत[9] बर्क़[10] की करता हूँ और अफ़सोस हासिल[11] का।

बक़दरे-जर्फ़[12] है, साक़ी! खुमारे-तश्नाकामी[13] भी
जो तू दरियाए-मै[14] है, मैं खुमियाजा[15] हूँ साहिल का।

१—जंगल। २—थकन। ३—गतिमान लहरों पर तैरते हुए बुलबुले। ४—पद-चिह्न। ५—फूल के सुगन्ध की लहर। ६—सिर से पाँव तक। ७—प्रेम-धरोहर। ८—अवश्यम्भावी जीवन-प्रेम। ९—पूजा। १०—बिजली। ११—प्राप्ति। १२—सामर्थ्य के अनुसार। १३—प्यास की खुमार। १४—शराब की नदी। १५—अँगड़ाई, परिणाम।

:: ९ ::

मेरी तामीर[1] में मुज़मर[2] है एक सूरत ख़राबी की।
हयूला[3] बर्क़े-ख़िरमन[4] का है, ख़ूने-गर्म दहक़ाँ[5] का।

नहीं मालूम किस किस का लहू पानी हुआ होगा
क़यामत है सरश्क-आलूदा[6] होना तेरी मिज़गाँ[7] का।

नज़र में है हमारी जादए-राहे-फ़ना[8] 'ग़ालिब'
कि ये शीराज़ा[9] है आलम के अज्ज़ाए परीशाँ[10] का।

:: १० ::

महरम[11] नहीं है तूही नवाहाय-राज़[12] का,
याँ वरना जो हिजाब[13] है पर्दा है साज़[14] का।

१—रचना। २—निहित। ३—तत्व। ४—खलिहान पर गिरने वाली बिजली। ५—किसान। इस शेर में गालिब कहते हैं कि मेरी हर रचना या निर्माण में एक खराबी की सूरत छिपी रहती है और खलिहान पर जो बिजली गिरती है वह और कुछ नहीं किसान के अथक परिश्रम के कारण उसके खून की गर्मी होती है जो बिजली का रूप धारण कर लेती है अर्थात् हमारी खुशी का सामान ही हमारी बरबादी का कारण बन जाता है और खुशी से ही ग़म की सूरत पैदा हो जाती है। ६—आँसू भर आना। ७—पलकें। ८—मृत्यु का मार्ग। ९—कड़ी। १०—बिखरे तत्व। ११—जानने वाला। १२—भेद के गीत। १३—पर्दा। १४—बाजा। कहते हैं कि वास्तविक जगत के रहस्य या भेद गीत बन-बन कर निकल रहे हैं। तू ही उन गीतों को नहीं समझता। तू जिस चीज़ को वास्तविक जगत का पर्दा समझता है वह एक बाजे का पर्दा है जिसमें हर समय गीत सुनाई पड़ते हैं।

रंगे शिकस्ता[१] सुब्ह बहारे नजारा[२] है
ये वक़्त है शगुफ्तने-गुलहाय-नाज का[३]।

तू और सूए ग़ैर नज़र-हाय तेज़ तेज़[४]
मै और दुख तेरी मिज़:हाय-दराज़ का[५]।

ताराज[६] काविशे-ग़मे-हिजराँ हुआ 'असद'
सीना कि था दफ़ीना[७] गुहर-हाय राज़[८] का।

:: ११ ::

बज़्मे-शाहंशाह[९] में अशआर[१०] का दफ्तर खुला
रखियो यारब ये दरे-गंजीनए-गौहर[११] खुला।

१—उड़ा हुआ रंग। २—सुबह के समय बहार का दृश्य। ३—नाजके फूल खिलने का समय। यानी मेरा उड़ा हुआ रंग तेरे लिये बहार की सुबह के दृश्य से कम नहीं। इसका आनन्द ले और नाज़ व अदा के फूल खिला। ४—दूसरों की ओर तेरी प्रेम भरी दृष्टि। ५—मिज़:हाए-दराज़ = लम्बी पलकें। तेरी लम्बी पलकें मुझे दुःख दे रही है क्योंकि वे दूसरों को देख रही है और मुझे इससे ईर्ष्या हो रही है। ६—बरबाद। काविश = खोद निकालना। ग़मे-हिजराँ = विरह की पीड़ा। ७—खज़ाना। ८—रहस्य के मोती यानी मेरे सीने में भेदों के मोतियों का खज़ाना बन्द था। अफ़सोस कि विरह के दुखों ने यह खज़ाना खोद कर निकाल लिया और प्रेम के सारे भेद प्रकट कर दिये। ९—बादशाह के दरबार। १०—शेर-ओ-सुख़न। ११—मोतियों के खज़ाने का दरवाजा यानी बादशाह की महफिल में शेर-ओ-सुखन की महफ़िल गर्म होने लगी और शायरों की क़द्र होने लगी इसलिए या ख़ुदा इस दरबार को बनाये रखना।

गरचे हूँ दीवाना, पर क्यों दोस्त का खाऊँ फ़रेब
आस्ती में दशना[1] पिनहाँ[2] हाथ में निश्तर[3] खुला।

गो न समझूँ उसकी बातें, गो न पाऊँ उसका भेद
पर ये क्या कम है कि मुझसे वह परी पैकर[4] खुला।

मुँह न खुलने पर है वो आलम[5] कि देखा ही नहीं
ज़ुल्फ़ से बढ़ नक़ाब उस शोख़ के मुँह पर खुला।

क्या रहूँ ग़ुरबत[6] में खुश जब हो हवादिस[7] का ये हाल
नामा[8] लाता है वतन से नामावर[9] अक्सर खुला।

१—छुरी। २—छिपी हुई। ३—घाव में चीरा लगाने की छुरी। कहते है कि यद्यपि मैं दीवाना हूँ पर दोस्त दुश्मन की पहचान रखता हूँ। ये लोग हाथ मे निश्तर लिए हुए मेरे घाव को चीर कर अच्छा करने को कहते हैं पर आस्तीन में मुझे मारने के लिए छुरा छिपा रखा है। ४—परी जैसी सुन्दरी। इस शेर मे खुला शब्द घुलने-मिलने और खुल जाने के अर्थ मे आया है। कहते है, चाहे मैं उसकी पेचीदा बाते न समझ पाऊँ, उसके भेद न जान पाऊँ, पर यही क्या कम है कि वह मुझसे खुल गया अर्थात बेतकल्लुफ़ हो गया। ५—हाल। ६—परदेश। ७—दुर्घटनाओं। ८—पत्र। ९—पत्र वाहक। जिस पत्र में किसी की मृत्यु का समाचार हो उसे खुला भेजते हैं। कहते हैं परदेश में भी विपदाओं से छुटकारा नहीं मिलता। अब स्वदेश से अक्सर लोगों की मौत की खबर आती रहती है।

१२

गलियों में मेरी नअ़श[1] को खींचे फिरो कि मैं
जाँदादए-हवाये-सरे-रह गुज़ार था।[2]
कम जानते थे हम भी ग़मे-इश्क़ को पर अब
देखा जो कम हुए पै ग़मे-रोजग़ार[3] था।

:: १३ ::

बस कि दुश्वार[4] है हर काम का आसाँ होना
आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्साँ होना।
गिरया[5] चाहे है ख़राबी मेरे काशाने[6] की
दर-ओ-दीवार से टपके है बयाबाँ होना।
वाय दीवानगिये-शौक़ कि हर दम मुझको
आप जाना उधर और आप ही हैराँ होना।
की मेरे क़त्ल के बाद उसने जफ़ा से तौबा
हाय उस ज़ूद-पशेमाँ[7] का पशेमाँ होना।
हैफ़[8] उस चार गिरह कपड़े की क़िस्मत 'ग़ालिब'
जिस की क़िस्मत में हो आशिक का गरेबाँ[9] होना।

१—लाश। २—(क्योंकि) मै इस गली की हवा पर जान देने वाला (प्रेमी) था ३—दुनिया के ग़म। कहते है कि अपनी अनुभव हीनता से हम इश्क़ के ग़म को बहुत कम समझते थे पर जब इस चक्कर में फंस गये तब पता चलता है कि कम होने पर भी यह ग़म सारी दुनिया के दुखों के बराबर है। ४—कठिन। दुनिया में आसान से आसान काम भी कठिन है जैसे कि आदमी पूरा इनसान नही बन सकता। ५—रुदन। ६—घर। कहते हैं कि मेरा रोना मेरे घर की बरबादी का इच्छुक है। इसीलिये दर-ओ-दीवार से बयाबाँ (जंगल) होने के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। अर्थात् रोने की इच्छा अभी से प्रकट हो रही है। ७—बहुत जल्दी अपनी भूल पर पछताने वाला। ८—अफ़सोस। ९—कुरते का गला।

:: १४ ::

शब, खुमारे-शौक़े-साक़ी[1] रस्तखेज अन्दाज़ा[2] था
ता मुहीते-बादा[3] सूरत खान-ए-खमियाज़ा[4] था।

यक क़दम-वहशत से, दर्से-दफ़्तरे-इमकां[5] खुला
जादा,[6] अज्जा-ए-दो आलम[7] दश्त का, शीराज़ा[8] था।

मानि-ए-वहशत खिरामीहा[9]-ए-लैला, कौन है
खान-ए-मजनूने-सहरा गर्द, बे दरवाज़ा था।

पूछ मत रुस्वाई-ए-अन्दाजे-इस्तग़ना-ए-हुस्न[10]
दस्त मरहूने-हिना,[11] रुख़सार रेहने-ग़ाज़ा[12] था।

नाल-ए-दिल ने दिये औराके-लख्ते-दिल,[13] बबाद[14]
यादगारे-नाला, इक दीवाने-बेशीराज़ा था।

१—साक़ी की इच्छा का खुमार। २—क़यामत का नमूना। ३—मदिरा की परिधि तक। ४—अंगड़ाइयों का तस्वीर-घर। ५—सम्भावना रूपी पुस्तक का पाठ। ६—रास्ता। ७—दोनों लोकों के अंश। ८—बंधन, बिखरी हुई चीजों का इकट्ठा रूप। ९—लैला को वहशत खिरामी से रोकने वाला। १०—सौंदर्य की निस्पृहता की शान का तिरस्कार। ११—मेंहदी का आभारी। १२—पावडर का आभारी। १३—दिल के टुकड़ों के पृष्ठ। १४—हवा को।

:: १५ ::

नालए-दिल[1] में शब, अन्दाज़े-असर नायाब था
था सिपन्दे[2] बज़्मे-वस्ले-ग़ैर[3], गो बेताब था !

मकदमे-सैलाब[4] से दिल क्या निशात-आहंग[5] है
खानए-आशिक़[6] मगर साज़े-सदाए-आब[7] था।

नाज़िशे-अय्यामे-खाकिस्तर-नशीनी,[8] क्या कहूँ
पहलुए-अन्देशा,[9] वक़्फ़े-बिस्तरे-संजाब[10] था।

कुछ न की, अपने जुनूने-ना-रसा ने, वरना यां
ज़र्रा ज़र्रा रुकशे-खुर्शीदे-आलम-ताब[11] था।

आज क्यों परवा नहीं अपने असीरों[12] की तुझे
कल तलक तेरा भी दिल मेहरोवफ़ा[13] काबाब[14] था।

याद कर वो दिन, कि हर इक हल्का तेरे दाम[15] का
इन्तज़ारे-सैद[16] में इक दीदए बेख्वाब[17] था।

मैंने रोका रात 'ग़ालिब' को वगरना देखते
उसके सैले-गिरिया[18] में गरदूं[19] कफ़े-सैलाब[20] था।

१—दिल की आह। २—एक पौधे का छोटा सा काला दाना जो आग में गिर कर आवाज देता है। ३—प्रतिद्वन्द्वी की मिलन-सभा ४—बाढ़ का स्वागत। ५—आनन्दित। ६—प्रेमी का घर। ७—पानी की आवाज। ८—धरती पर बैठ कर बिताए दिनों का गर्व। ९—चिन्ता की गोद। १०—मखमली बिस्तर पर आराम। ११—सूरज से ईर्ष्या करनेवाला। १२—कैदी। १३—प्रेम। १४—स्रोत। १५—जाल। १६—शिकार। १७—अपलक आँखें। १८—आँसुओं की बाढ़। १९—आकाश। २०—बाढ़ की आग।

:: १६ ::

दोस्त ग़मख़्वारी में मेरी सई[1] फ़रमाएँगे क्या
ज़ख्म के भरने तलक नाख़ुन न बढ़ आयेंगे क्या ?

वे नियाज़ी[2] हद से गुज़री, बन्दा परवर कब तलक
हम कहेंगे हाले-दिल और आप फ़रमाएँगे 'क्या ?'

हज़रते-नासेह[3] गर आयें, दीद ओ-दिल[4] फर्शे-राह
कोई मुझको यह तो समझा दो कि समझाऐंगे क्या ?

आज वाँ तेग़-ओ-कफ़न बाँधे हुए जाता हूँ मैं
उज़्र[5] मेरे क़त्ल करने में वो अब लायेंगे क्या ?

गर किया नासेह ने उस को क़ैद अच्छा यूँ सही
ये जुनूने-इश्क़[6] के अन्दाज़ छुट जायेंगे क्या ?

ख़ानज़ादे-ज़ुल्फ़[7] हैं, जंजीर से भागेंगे क्यों
है गिरफ्तारे-वफ़ा ज़िन्दा[8] से घबरायेंगे क्या ?

है अब इस मामूरा[9] में क़हते-ग़मे-उल्फ़त[10] 'असद'
हमने यह माना कि दिल्ली में रहे खायेंगे क्या ?

:: १७ ::

ये न थी हमारी किस्मत की विसाले-यार[11] होता
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार होता।

१—दोस्त मेरा दुःख बाँटने की भला क्या चेष्टा करेंगे, उनकी कोशिश से जब तक घाव भरेगा मेरे नाख़ून भी बढ़ आयेंगे। अर्थात् मैं उनसे अपने घाव को फिर कुरेद लूँगा। २—उपेक्षा। ३—उपदेशक। ४—आँख और हृदय। ५—आपत्ति, बहाना। ६—प्रेम का पागलपन। ७—ज़ुल्फ़ के ग़ुलाम। ८—कारागार। ९—बस्ती। १०—प्रेम के दुःख का काल। ११—यार से मिलन।

तेरे वादे पर जिये हम तो ये जान झूठ जाना
कि खुशी से मर न जाते अगर एतबार न होता[१]।

तेरी नाजुकी से जाना कि बँधा था अहद[२] बोदा
कभी तू न तोड़ सकता, अगर उस्तवार[३] होता।

कोई मेरे दिल से पूछे, तेरे तीरे-नीम कश[४] को
ये खलिश[५] कहाँ से होती, जो जिगर के पार होता।

ये कहाँ की दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासेह
कोई चारा साज[६] होता, कोई गमगुसार[७] होता।

रगे-संग[८] से टपकता वो लहू कि फिर न थमता
जिसे गम समझ रहे हो ये अगर शरार[९] होता।

गम अगरचे जाँगुलस[१०] है पै कहाँ बचें कि दिल है
ग़मे-इश्क़ गर न होता, ग़मे-रोज़गार[११] होता।

१—तू यह जान ले कि हम तेरे वादे को सच नहीं समझे, यदि हमें तुझ पर विश्वास ही होता तो मारे खुशी के मर ही न जाते। २—वचन। ३—मजबूत। यानी अगर तेरा वचन मजबूती से बँधा होता तो तू अपनी नाजुकी (कोमलता) से उसे कभी न तोड़ पाता। दर असल वचन ही बोदा बँधा था। ४—आधी शक्ति से चलाया हुआ तीर। ५—खटक। यदि पूरी शक्ति से तीर चलाया गया होता तो वह जिगर के पार हो हो गया होता तब इस खटक और टीस का आनन्द न मिलता। ६—चिकित्सक। ७—साथी जो दुःख बँटाता। ८—पत्थर की रग। ९—चिनगारी। कहते है कि गम वह चीज है कि मनुष्य तो मनुष्य यदि पत्थर की रग में भी चिनगारी बन कर घुस जाता तो उसे भी पिघला देता है। १०—प्राण-घातक। ११—दुनिया का दुख यानी हम दुख से बच नहीं सकते थे। प्रेम की वेदना यद्यपि प्राण-घातक है परन्तु यह न होता तो संसार का दुख होता जिसका हर क्षण मृत्यु के समान कष्टप्रद है

कहूँ किससे मैं कि क्या है? शबे-ग़म[1] बुरी बला है
मुझे क्या बुरा था मरना, अगर एक बार होता।

हुए मर के हम जो रुस्वा,[2] हुए क्यों न ग़र्क़े-दरिया[3]
न कभी जनाज़ा उठता न कहीं मज़ार होता।

ये मसायले-तसव्वुफ़[4] ये तेरा बयान 'ग़ालिब'
तुझे हम वली[5] समझते जो न बादाख़्वार[6] होता।

:: १८ ::

हवस[7] को है नशाते कार[8] क्या क्या
न हो मरना तो जीने का मज़ा क्या।

नवाज़िशहाय बेजा[9] देखता हूँ
शिकायतहाय रंगी[10] का गिला क्या।

१—दुख की रात। २—बदनाम। ३—नदी में डूबना। ४—सूफ़ीवाद की समस्याएँ, ५—बुज़ुर्ग, पहुँचा हुआ फ़क़ीर। ६—शराबी। अर्थात् तू इस तरह से सूफ़ीवाद के प्रश्नों पर प्रकाश डालता है और समस्याओं को सुलझाता है कि तू शराबी न होता तो हम अवश्य ही तुझे वली समझते। ७—माया-मोह। ८—काम करने की उमंगें। यदि मौत सिर पर न खड़ी हो तो मनुष्य में जीवन को आनन्दमय बनाने की इतनी इच्छा न हो क्योंकि जितनी ही मोहलत मिलती है उतनी ही सुस्ती से आदमी काम करता है। ९—अनुचित कृपा और स्नेह। १०—प्रेमपूर्ण शिकायतें। दूसरों पर तेरी अनुचित कृपा देखकर मैं तुझसे शिकायत भी करता हूँ तो बड़े स्नेह पूर्ण शब्दों में, पर तू इसका भी गिला (शिकायत) करता है।

निगाह-बमहाबा[1] चाहता हूँ
तग़ाफ़ुलहाय तमकीं आज़मा[2] क्या।

सुन ए ग़ारतगरे-जिन्से-वफ़ा[3] सुन
शिकस्ते-क़ीमते दिल[4] की सदा क्या?

किया किसने जिगरदारी का दावा
शकेबे-ख़ातिरे आशिक़[5] भला क्या?

बलाए-जाँ है ग़ालिब' उसकी हर बात
इबारत[6] क्या, इशारत[7] क्या, अदा क्या?

:: १६ ::

दर ख़ुरे-क़ह्‌र-ओ-ग़ज़ब[8] जब कोई हम सा न हुआ
फिर ग़लत क्या है कि हम सा कोई पैदा न हुआ।

१—बेझिझक, बेतकल्लुफ़। २—धैर्य की परीक्षा। मुझे निस्संकोच और स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखो। यह धैर्य की परीक्षा लेने वाली उपेक्षा क्यों कर रहे हो? ३—वफ़ा की जिन्स को लूटने वाले ४—दिल टूटने की आवाज़। ए जिन्से-वफ़ा को लूटने वाले सुन और ध्यान से सुन कि जिस वफा को तूने लूटा है उसी के कारण तो दिल का मूल्य था। उसके बिना दिल की क़ीमत टूट चुकी है। दिल के टूटने की तो आवाज भी होती पर उस मूल्य के टूटने की तो आवाज या फ़रियाद भी नही होती फिर अब क्यों डरता है? ५—आशिक का धैर्य और सब्र। कहते है कि तू मेरे धीरज और सब्र की परीक्षा क्यों ले रहा है, भला प्रेमी कभी जिगरदारी (धैर्य और सब्र) का दावा करता है जो तू यह परीक्षा ले। ६—लिखावट। ७—संकेत। उसकी हर एक मुसीबत है चाहे वह लिखे, इशारा करे या अदा दिखाये। ८—क़ह्र व ग़ज़ब या क्रोध और कोप सहने वाला। जब तू जानता है कि तेरा ग़ुस्सा या कोप सहने वाला और कोई नहीं तो फिर यह भी गलत नही है कि मेरा जैसा दूसरा कोई पैदा ही नहीं हुआ।

बन्दगी[1] में भी वह आज़ादा-ओ ख़ुदबी[2] है कि हम
उलटे फिर आए दरे-काबा[3] अगर वा[4] न हुआ।
सीने का दाग़ है वह नाला[5] कि लब तक न गया
खाक का रिज़्क़[6] है वह क़तरा जो दरिया न हुआ।
थी ख़बर गर्म कि 'ग़ालिब' के उड़ेंगे पुर्ज़े[7]
देखने हम भी गये थे पै तमाशा न हुआ।

:: २० ::

दिल को हम सर्फ़े-वफ़ा[8] समझे थे क्या मालूम था
यानी यह पहले ही नज़्रे-इम्तहाँ[9] हो जायगा।
सबके दिल में जगह तेरी जो तू राज़ी हुआ
मुझ पै गोया एक ज़माना मेहरबाँ हो जायगा।
गर निगाहे-गर्म फ़रमाती रही तालीमे ज़ब्त[10]
शोला[11] ख़स[12] में जैसे ख़ूँ रग में निहाँ[13] हो जायगा।

१—पूजा। २—स्वाभिमानी दृष्टि वाला। ३—काबे का द्वार। ४—खुला। हम पूजा करने में भी अपने स्वाभिमान का इतना ध्यान रखते है कि यदि काबे का द्वार खुला न हुआ तो उलटे पाँव लौट आते हैं। ५—रुदन। ६—ख़ुराक। जो रुदन दिल ही में घुट कर रह गया वह सीने का दाग़ बन गया और जो क़तरा (बूँद) नदी में नहीं मिला वह मिट्टी की ख़ूराक बन गया। ७—ख़ूब बदनामी होगी, सजा मिलेगी। ८—वफ़ा की राह में काम आयेगा। ९—इम्तहान की भेंट चढ़ जायगा। १०—सहनशीलता की शिक्षा। ११—लपट। १२—तिनका। १३—निहित। अर्थात् यदि तेरे क्रोध की दृष्टि मुझे बराबर चुप रहने और प्रेम की आग को सहने की ही शिक्षा देती रही तो तेरे क्रोध के डर से तिनकों के अन्दर भी आग इस तरह छिपती फिरेगी जैसे धमनियों में ख़ून छिपा होता है। तिनकों में आग तुरन्त भड़क उठती है पर यह आग भड़कने का नाम भी न लेगी

बाग़ मे मुझको न लेजा वरना मेरे हाल पर
हर गुले-तर[१] एक चश्मे-खूँफ़िशाँ[२] हो जायगा।

वाय[३] गर मेरा तेरा इन्साफ महशर[४] में न हो
अब तलक तो यह तवक़्क़ा[५] है कि वाँ हो जायगा।

फ़ायदा क्या सोच आख़िर तू भी है दाना[६] 'असद'
दोस्ती नादाँ की है जी का ज़ियाँ[७] हो जायगा।

:: २१ ::

दर्द मिन्नत कशे-दवा[८] न हुआ
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ।

जमअ करते हो क्यों रक़ीबों[९] को ?
एक तमाशा हुआ, गिला[१०] न हुआ।

हम कहाँ किस्मत आज़माने जायँ
तू ही जब खंजर आज़मा[११] न हुआ।

कितने शीरीं[१२] हैं तेरे लब,[१३] कि रक़ीब
गालियाँ खा के बेमज़ा न हुआ।

१—ताजा खिला फूल। २—खून बरसाती आँख।३—हाय। ४—कयामत का दिन, जब ईश्वर सब के पुण्य और पाप का न्याय करेगा। ५—आशा। ६—समझदार। ७—जंजाल। ८—दवा का एहसान दर्द ने न लिया। ९—प्रतिद्वंद्वियों। १०—शिकायत। ११—खंजर आज़माने अर्थात् मुझे मारने के लिये उसका प्रयोग करने। कहते है कि जब तू ही न मारेगा तो हम अपना भाग्य और कहाँ आजमायें। मतलब यह कि हम तो तेरे ही हाथों मरना चाहते हैं। १२—मधुर। १३—होंठ। गालियाँ खा के भी रक़ीब खफ़ा नहीं हुआ इसमें प्रकट होता है कि तेरे होंठ कितने मधुर हैं। यहाँ खफा होने को बे मज़ा इसलिये कहा है कि होंठों को मीठा कह चुके हैं।

है ख़बर गर्म उनके आने की।
आज ही घर में बोरिया न हुआ।

क्या व नमरूद[1] की ख़ुदाई थी?
बन्दगी में मेरा भला न हुआ।

जान दी, दी हुई उसी की थी
हक़[2] तो यह है कि हक़[3] अदा न हुआ।

कुछ तो पढ़िये कि लोग कहते हैं
आज 'ग़ालिब' ग़ज़ल-सरा[4] न हुआ।

:: २२ ::

ग़मे-फिराक़ में तकलीफ़ेसैर-बाग़ न दे
मुझे दिमाग़ नहीं ख़न्दःहाय-बेजा[5] का।

१—एक बादशाह जिसने अपने को ईश्वर मनवाना चाहा था। कहते है कि मेरी बन्दगी (पूजा) क्या नमरूद की ख़ुदाई थी कि मुझे कोई लाभ न हुआ। २, ३—पहले 'हक़' का अर्थ है सत्य और दूसरे का अर्थ है फ़र्ज़ या कर्त्तव्य। कहते हैं कि मैंने जान भी दे दी तो क्या हुआ, क्योंकि यह तो उसी की प्रदान की हुई थी। परन्तु सत्य तो यह है कि मैंने जीवन में कभी इस ईश्वरीय देन के लिये उसको धन्यवाद नहीं दिया और इस कर्त्तव्य की अवहेलना करता रहा। ४—गजल पढ़ने वाला। ५—अनुचित हँसी। कहते हैं कि मैं विरह के दुख से स्वयं दुखी हूँ। मुझे बाग़ की सैर से आनन्द की जगह कष्ट ही होगा, क्योंकि फूल अपनी प्रकृति के अनुसार हँसेंगे (खिलेंगे) अवश्य और मैं उनकी इस अनुचित हँसी को सह नहीं सकता।

दिल उसको पहले ही नाज़-ओ-अदा से दे बैठे
हमें दिमाग़ कहाँ, हुस्न के तक़ाज़ा[1] का।

फ़लक[2] को देख के करता हूँ उसको याद 'असद'
जफ़ा में उसकी है अन्दाज़ कार-फ़रमा[3] का।

:: २३ ::

एतबारे इश्क़[4] की ख़ाना ख़राबी देखना
ग़ैर ने की आह लेकिन वह ख़फ़ा मुझ पर हुआ।

:: २४ ::

जब बतक़रीबे-सफ़र[5] यार ने महमिल[6] बाँधा
तपिश-शौक़[7] ने हर ज़र्रे पै एक दिल बाँधा।

१—कहते हैं कि हम तो उसके नाज व अन्दाज देख पहले ही दिल दे बैठे। भला इतना धैर्य कहाँ होता कि उसके माँगने की प्रतीक्षा करते। २—आकाश। ३—वह महान शक्ति जो आकाश को जफा (अत्याचार) करने की आज्ञा देती है। इस शेर में कहा गया है कि जब आकाश को देखता हूँ तो तेरी याद आ जाती है। क्योंकि उसकी जफ़ाओं में भी तेरी ही जफाओं का रंग झलकता है। ४—इश्क का विश्वास। मेरे प्रेम का उसे इतना विश्वास है कि कोई दूसरा भी आह करता है तो वह यही समझता है कि यह मेरा काम है और मुझ पर नाराज होता है। ५—यात्रा के लिये। ६—ऊँट पर बैठने के लिए पर्देदार कजावा। इस शेर का मतलब है कि जब प्रिय ने एकांत से निकलकर सब को दर्शन देने की तैयारी की तब शौक की गर्मी से प्रत्येक कण एक व्याकुल हृदय बन गया और तड़पने लगा। ७—शौक़ की गर्मी।

न बँधे तिश्नगिये शौक़[1] के मज़्नूँ 'ग़ालिब'
गरचे दिल खोल के दरिया को भी साहिल बाँधा।

:: २५ ::

मैं और बज़्मे मय[2] से यूँ तिश्ना-काम[3] आऊँ
गर मैंने की थी तौबा साक़ी को क्या हुआ था ?

है एक तीर जिसमें दोनों छिदे पड़े हैं
वह दिन गये कि अपना दिल से जिगर जुदा था।

:: २६ ::

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता
बह्र[4] अगर बह्र न होता तो बियाबाँ[5] होता।

तंगिये-दिल[6] का गिला क्या ये वो काफ़िर दिल है
कि अगर तंग न होता तो परेशाँ होता।

१—कूल, किनारा। किनारे को प्यासा कहते हैं क्योंकि वह हर समय नदी पर झुका रहता है। ग़ालिब कहते हैं कि हमने अति-शयोक्ति से काम लेकर नदी को भी किनारा लिखा पर शौक़ की प्यास दिखलाने की चेष्टा नफल न हो सकी, मेरी वर्णन शक्ति निष्फल रही। २—शराब की महफ़िल। ३—अतृप्त। ४—समुद्र। ५—जंगल। घर को वीरान तो होना ही था। रोये तो आँसुओं की नदी ने वीरान कर दिया। न रोते तो भी उसी तरह वीरान होता जैसे समुद्र के सूख जाने पर मैदान बन जाता है। ६—दिल की तंगी का अर्थ है उदासी और दुख। कहते हैं कि इस दिल की तंगी की क्या शिकायत करूँ। यह वह ज़ालिम है कि यदि उदास और दुखी न होता तो परेशान होता। शान्ति तो इसके भाग्य में है ही नहीं।

२७

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता
डबोया मुझको होने ने न मैं होता तो क्या होता।*

हुई मुद्दत कि 'ग़ालिब' मर गया पर याद आता है
वो हर एक बात पर कहना कि यूँ होता तो क्या होता।

:: २८ ::

बुलबुल के कारबार पै है ख़न्दाहाय-गुल[1]
कहते हैं जिसको इश्क़ खलल[2] है दिमाग़ का।

:: २९ ::

शहे-असबाबे-गिरफ़्तारिये-ख़ातिर[3] मत पूछ
इस क़दर तंग हुआ दिल कि मैं जिन्दाँ[4] समझा।

---

* इस शेर में बिलकुल नए ढंग से अस्ति से नास्ति को बढ़ाया है। कहते हैं कि मैं न होता तो यह देखना है कि मैं क्या चीज होता, मतलब है कि खुदा होता। इसीलिये अपने 'होने' पर दुख प्रकट कहते हैं और 'न होने' अर्थात् 'नास्ति' को अच्छा समझते है।

१—फूल की हँसी। २—खराबी। बुलबुल के कारबार से मतलब है उसका रोना धोना, फूलों से प्रेम करना। ३—गिरफ्ता खातिरी और दिल तंगी दोनों का एक ही अर्थ है—परेशानी, चिन्तित रहना। ४—क़ैदखाना। कहते हैं कि प्रेम के कारण मुझे जो दुख उठाने पड़े और परेशानी हुई उसके कारणों का विस्तार क्या पूछते हो। मेरा दिल इतना तंग हो गया कि मैंने उसे क़ैदखाना समझ लिया।

:: ३० ::

हुई ताख़ीर,[1] तो कुछ बाइसे-ताख़ीर[2] भी था
आप आते थे, मगर कोई इनांगीर[3] भी था।

तुम से बेजा, है मुझे अपनी तबाही का गिला
इसमें कुछ शायब-ए-ख़ूबी-ए-तक़दीर[4] भी था।

तू मुझे भूल गया हो तो पता बतला दूँ
कभी फ़ितराक[5] में तेरे; कोई नख़चीर[6] भी था।

कैद में, है तिरे वहशी को, वही ज़ुल्फ़ की याद
हाँ कुछ इक रंजे-गरांबारि-ए-ज़ंजीर[7] भी था।

बिजली इक कौन्द गई आँखों के आगे, तो क्या
बात करते, कि मैं लब तश्न-ए-तक़रीर[8] भी था।

यूसुफ़ उसको कहूँ, और कुछ न कहे ख़ैर हुई
गर बिगड़ बैठे, तो मैं लायक़-ताज़ीर[9] भी था।

देखकर ग़ैर को, हो क्यों न कलेजा ठण्डा
नाला करता था, बले तालिबे-तासीर[10] भी था।

१—देर। २—देर का कारण। ३—लगाम पकड़ने वाला। ४—सौभाग्य का अंश। ५—शिकारी का थैला। ६—शिकार। ७—जंजीर के भारी बोझ का दुख। ८—भाषण सुनने को उत्सुक। ९—दण्ड का भागी। १०—प्रभाव का अभिलाषी।

पेशे में ऐब नहीं, रखिये न फ़रहाद को नाम
हम भी आशुफ़्तासरी[१] में,वो जवाँ 'मीर' भी था।

हम थे मरने को खड़े, पास न आया, न सही
आखिर उस शोख़ के तरकश में कोई तीर भी था।

पकड़े जाते हैं फरिश्तों के लिखे पर, नाहक़
आदमी कोई हमारा, दमे-तहरीर भी था।

रेख़्ते[२] में तुम्हीं उस्ताद नहीं हो, 'ग़ालिब'
कहते हैं, अगले जमाने में कोई 'मीर' भी था।

:: ३१ ::

लबे-ख़ुश्क, दर-तश्नगी मुर्दगाँ[३] का
ज़ियारत-कदा[४] हूँ दिल-आजुर्दगाँ[५] का।

हमा[६] ना-उमीदी[७] हमा-बदगुमानी[८]
मैं दिल हूँ फरेबे-वफ़ा-ख़ुर्दगाँ[९] का।

१—हतबुद्धि। २—घरेलू उर्दू कविता। ३—मुर्दा। ४—तीर्थस्थान। ५—परेशान, दुखी चित्त। ६—पूर्ण। ७—निराशा। ८—पूर्ण आशंका। ९—प्रेम में धोखा खाए हुए।

पेशे में ऐब नहीं, रखिये न फ़रहाद को नाम
हम भी आशुफ़्तासरी[1] में,वो जवाँ 'मीर' भी था।

हम थे मरने को खड़े, पास न आया, न सही
आखिर उस शोख़ के तरकश में कोई तीर भी था।

पकड़े जाते है फरिश्तों के लिखे पर, नाहक़
आदमी कोई हमारा, दमे-तहरीर भी था।

रेख़्ते[2] में तुम्हीं उस्ताद नहीं हो, 'ग़ालिब'
कहते हैं, अगले जमाने में कोई 'मीर' भी था।

:: ३१ ::

लबे-ख़ुश्क, दर-तश्नगी मुर्दगाँ[3] का
जियारत-कदा[4] हूँ दिल-आज़ुर्दगाँ[5] का।

हमा[6] ना-उमीदी[7] हमा-बदगुमानी[8]
मैं दिल हूँ फरेबे-वफ़ा-खुर्दगाँ[9] का।

१—हतबुद्धि। २—घरेलू उर्दू कविता। ३—मुर्दा। ४—तीर्थस्थान। ५—परेशान, दुखी चित्त। ६—पूर्ण। ७—निराशा। ८—पूर्ण आशंका। ९—प्रेम मे धोखा खाक हुए।

:: ३२ ::

फिर मुझे दीदए-तर[1] याद आया
दिल जिगर तिशनए-फ़रियाद[2] आया।

दम लिया था न क़यामत ने हनोज़[3]
फिर तेरा वक्ते-सफ़र याद आया।

सादगीहाय तमन्ना यानी
फिर वो नैरंगे-नज़र[4] याद आया।

उज्रे-वामांदगी[5] ए हसरते-दिल
नाला करता था जिगर याद आया।

ज़िन्दगी यूं भी गुज़र ही जाती
क्यों तेरा राह-गुज़र[6] याद आया।

१—सजल नेत्र। २—फरियाद के प्यासे। मैंने दिल और जिगर को फरियाद का इच्छुक देखा तो मुझे अपनी आँख के आँसू याद आ गये। मैंने रोना इसलिये शुरू कर दिया कि दिल और जिगर कुछ हल्के हो जायँ और फरियाद करने की प्यास मिट जाय। ३—अभी। तेरे जाने से जो क़यामत (असीम दुख) हुई थी उसका प्रभाव अभी कम नहीं हुआ था कि तेरे विदा होने का समय फिर याद आ गया। ४—निगाह का जादू। ५—असमर्थता तथा विनम्रता। दिल को हसरत है कि खूब जोर से फ़रियाद करे। पर मैं असमर्थता दिखलाता हूँ, कारण कि फ़रियाद के प्रभाव से जिगर फट चुका है और उनका अन्त हो गया है। अब कहीं दिल की भी वही दशा न हो। ६—गली।

आह वह जुरअते-फ़रियाद[१] कहाँ
दिल से तंग आके जिगर याद आया।

फिर तेरे कूचे को जाता है ख़याल
दिले-गुम गश्ता[२] मगर, याद आया।

कोई वीरानी सी वीरानी है
दश्त[३] को देख के घर याद आया।

क्या ही रिज़्वाँ[४] से लड़ाई होगी
घर तेरा ख़ुल्द[५] में गर याद आया।

मैंने मजनूँ पै लड़कपन में 'असद'
संग[६] उठाया था कि सर याद आया।

:: ३३ ::

तू दोस्त किसी का भी सितमगर न हुआ था।
औरों पै है वह ज़ुल्म जो मुझ पर न हुआ था।

१—फरियाद करने की हिम्मत। दिल उसकी (प्रिय की) बद-नामी के डर से फ़रियाद करने से डरता है इसलिये जिगर याद आ रहा है। २—खोया हुआ दिल। प्रिय को दिल का चोर नहीं कहना चाहते पर बात वही है कि तेरे कूचे का ख्याल आते ही अपना खोया हुआ दिल याद आ जाता है। ३—जंगल। ४—जन्नत का दारोगा। ५—स्वर्ग। ६—पत्थर। कहते हैं कि मैंने भी और लड़कों की तरह बचपन मे मजनू पर पत्थर उठाया था, परन्तु फिर अपना सिर याद आ गया, क्योंकि मेरे सिर में भी प्रेम का पागलपन भरा था।

तौफ़ीक़[1] व अन्दाज़ए-हिम्मत है अज़ल[2] से
आँखों में है वह क़तरा[3] कि गौहर[4] न हुआ।

जब तक कि न देखा था क़दे-यार[5] का आलम
मैं मोतक़िदे फ़ितनए-महशर[6] न हुआ था।

:: ३४ ::

आईना देख अपना सा मुँह लेके रह गये
साहब को दिल न देने पै कितना ग़ुरूर[7] था।

क़ासिद[8] को अपने हाथ से गर्दन न मारिये
उसकी खता नहीं है ये मेरा क़ुसूर था।

१—रुतबा। २—सृष्टि के आदि से। ३—बूंद। ४—मोती। प्रत्येक वस्तु अपनी हिम्मत के अनुसार स्थान पाती है। वही बूंद थी जो समुद्र में मोती बन गई और वही बूंद अपनी हिम्मत से आँख में आँसू बन कर जगह पा गई। आँखों में जगह पाना मुहावरा है जिसका अर्थ है बहुत प्रिय होना। ५—यार का क़द, शरीर। ६—कायमत के फ़ितने (चंचलता) को मानने वाला। पहले केवल कयामत (प्रलय) के शोरगुल और झगड़ों के बारे में सुना ही था, कभी विश्वास न किया था पर जब प्रिय का डील-डौल, उसकी चाल-ढाल देखी तब मुझे क़यामत का भी विश्वास हो गया। ७—घमंड। इस शेर का मतलब है कि प्रिय को अपने सौंदर्य पर इतना अभिमान था कि किसी को अपने बराबर न समझता था। पर जब आईने में अपना प्रतिबिम्ब देखा तो अपने ही रूप पर मोहित हो गया और यह देख कर कि मेरे बराबर दूसरा भी सुन्दर है, उसका मुँह उतर गया। ८—पत्र वाहक।

:: ३५ ::

अर्ज़े-नियाज़े इश्क़[१] के क़ाबिल नहीं रहा
जिस दिन पै नाज़ था मुझे वह दिल नहीं रहा।

मरने की ए दिल और ही तदबीर कर, कि मैं
शायाने-दस्त-ओ-बाज़ुए क़ातिल[२] नहीं रहा।

गो मैं रहा रहीने-सितम-हाय रोज़गार[३]
लेकिन तेरे ख़याल से ग़ाफ़िल नहीं रहा।

बेदादे-इश्क़[४] से नहीं डरता मगर 'असद'
जिस दिल पै नाज़ था मुझे वह दिल नहीं रहा।

:: ३६ ::

रश्क[५] कहता है कि 'उसका गैर से इख़लास[६] हैफ़[७]'
अक़्ल कहती है कि 'वह बे मेह्र[८] किसका आशना[९] ?'

१—प्रेम की बात कहने। २—मुझे प्रिय इस योग्य नही समझता कि अपने हाथों से क़त्ल करे इसलिए ए दिल, अब अपने मरने की कोई और तरकीब सोच। ३—यद्यपि मैं सांसारिक कष्टों और कठिनाइयो मे हो फँसा रहा पर तेरा ध्यान हर समय रहा। ४—प्रेम के कष्ट। इस शेर की दूसरी पंक्ति भी वही है जो पहले शेर की दूसरी पंक्ति है। इस शेर का भी वही मतलब है। अर्थात् अपने दिल के न रहने पर शोक प्रकट करते हैं। कहते कि मैं प्रेम मे होने वाले कष्टों से नहीं डरता। लेकिन अफसोस कि वह दिल ही नहीं रहा जिसके कारण मै हर कष्ट को सह लेता था। ५—ईर्ष्या। ६—सच्चा स्नेह। ७—अफसोस। ८—बेमुरव्वत। ९—दोस्त, प्रेमी। ईर्ष्या का कहना है कि वह औरों से प्रेम करता है और इसका उसे दुख है परन्तु बुद्धि का कहना है कि वह निष्ठुर प्रिय किसी से भी प्रेम नही करता इसलिय इसका दुख व्यर्थ है

मैं और एक आफ़त का टुकड़ा वो दिले-वहशी कि है
आफ़ियत[1] का दुश्मन और आवारगी का आशना।

:: २७ ::

ज़िक्र उस परीवश[2] का और फिर बयाँ अपना
बन गया रक़ीब[3] आख़िर, था जो राज़दाँ[4] अपना।

मय वो क्यों बहुत पीते बज़्मे-ग़ैर में यारब
आज ही हुआ मंज़ूर उनको इम्तहाँ अपना।[5]

दे वो जिस कदर ज़िल्लत[6] हम हँसी में टालेंगे
बारे आशना निकला उनका पासबाँ[7] अपना।

१—शान्तिमय जीवन। अब मेरा साथी हृदय ही रह गया है परन्तु वह भी एक ही आफ़त का टुकड़ा है जो शांति का दुश्मन है और इधर-उधर आवारा फिरना उसे बहुत पसन्द है। २—सुन्दरी। ३—प्रतिद्वन्दी। ४—भेदी, विश्वासपात्र। कहते हैं कि एक तो उस (प्रिय) जैसे सुन्दर की चर्चा और फिर मेरा जैसा वर्णन करने वाला। मैंने इस ढंग से उसकी सुन्दरता का वर्णन किया कि मेरा भेदी भी उसका चाहने वाला (रक़ीब) बन गया। ५—यदि अपने शराब पीने का उन्हें इम्तहान ही लेना था तो उन्होंने दूसरे की सभा क्यों चुनी क्या मेरे घर में वे ख़ूब पीकर नहीं बहक सकते थे। ६—अपमान। ७—पहरेदार दरबान। कहते हैं कि वह हमें जितना भी अपमानित करेगा, हम हँसी में ही टालते जायँगे क्योंकि उनका दरबान अपना परिचित निकला

दर्दे-दिल लिखूँ कब तक, जाऊँ उनको दिखला दूँ
उँगलियाँ फ़िगार[1] अपनी ख़ामा ख़ूँचकाँ[2] अपना।

ता करे न ग़म्माज़ी[3], कर लिया है दुश्मन को
दोस्त की शिकायत में, हमने हमज़बाँ[4] अपना।

हम कहाँ के दाना[5] थे, किस हुनर में यकता[6] थे
बे सबब हुआ 'ग़ालिब' दुश्मन आस्माँ अपना।

:: ३८ ::

सुर्मए-मुफ़्त-नज़र[7] हूँ मेरी कीमत यह है
कि रहे चश्मे-ख़रीदार[8] पै एहसाँ मेरा।

रुख़्सते नाला[9] मुझे दे कि मबादा[10] ज़ालिम
तेरे चेहरे से हो ज़ाहिर ग़मे-पिनहाँ[11] मेरा।

१—फटी हुई। २—ख़ून टपकाती कलम। कब तक पत्र द्वारा अपने दिल के दर्द का हाल लिखे जाऊँ, इससे अच्छा तो यही होगा कि जाकर अपनी अँगुलियाँ दिखला दूँ जो लिखते-लिखते फट गई हैं और अपनी लेखनी भी, जिससे ख़ून टपकने लगा है। ३—भेद न खोल दे। ४—अपनी ही बात कहने वाला, स्वर में स्वर मिलाने वाला। ५—विद्वान। ६—विशेषज्ञ। आस्मान की दुश्मनी पर उर्दू कवियों ने बहुत ढंग से लिखा है। कोई भी विपदा आये, उसमें उन्हें आस्मान का हाथ दिखाई पड़ता है। ग़ालिब भी कहते हैं कि हम न कोई विद्वान हैं न किसी कला के विशेषज्ञ हैं फिर भी आस्मान अकारण ही हमारा दुश्मन हो गया है। ७—निगाह के लिये मुफ़्त सुर्मा। ८—ख़रीदार की आँख। ९—रुदन। १०—कहीं ११—गुप्त व्यथा। कहते हैं कि ए ज़ालिम! मुझे रोने से मत रोक कहीं ऐसा न हो कि मेरी गुप्त-व्यथा का प्रभाव तेरे चेहरे पर भी पड़ जाय और इस प्रकार यह प्रकट हो जाय

:: ३६ ::

ग़ाफ़िल,[1] ब वहमे-नाज़[2] ख़ुद-आरा है वरना यां
बे-शानए-सबा[3] नहीं तुर्रा गयाह[4] का।

बज़्मे-क़दह[5] से ऐशे-तमन्ना[6] न रख, कि रंग
सैद-ज़दाम-जस्ता[7] है, इस दामगाह[8] का।

रहमत[9] अगर क़ुबूल करे, क्या बईद[10] है
शर्मिन्दगी से उज्र न करना गुनाह का।

मक़तल[11] को किस निशात[12] से जाता हूँ मैं, कि है
पुर-गुल[13] ख़याले-ज़ख़्म[14] से, दामन निगाह का।

जां दर[15] हवाए-यक-निगहे-गर्म[16] है; 'असद'
परवाना है वकील, तेरे दाद-ख़्वाह[17] का।

१—बेखबर। २—अदा के भ्रम से। ३—हवा की कंघी के बिना। ४—घास। ५—प्याला, शराब की महफिल। ६—रोष की चाह। ७—जाल से छूट कर भागा हुआ शिकार। ८—वह स्थान जहाँ जाल बिछा हो। ९—खुदा। १०—दूर। ११—कत्ल का स्थान। १२—खुशी। १३—फूलों से भरा। १४—घाव का ध्यान। १५—इच्छुक। १६—उत्साही दृष्टि की कामना में। १७—फरियादी न्याय का इच्छुक

४०

लताफ़त[1] बे-कसाफ़त[2] जल्वा पैदा कर नहीं सकती
चमन जंगार[3] है आईनए-बादे-बहारी[4] का।

हरीफ़े-जोशिशे-दरिया[5] नहीं, खुद्दारिए-साहिल[6]
जहाँ साक़ी हो तू; बातिल[7] है दावा होशियारी का।

:: ४१ ::

अफ़सोस कि दन्दां का किया रिज़्क़[8] फ़लक[9] ने
जिन लोगों की थी दरखुरे-अक़्दे-गुहर[10] अंगुश्त[11]।

काफ़ी है निशानी तेरे छल्ले का न देना
खाली मुझे दिखला के बवक़्ते सफ़र[12] अंगुश्त।

लिखता हूँ 'असद' सोज़िशे-दिल[13] से सुख़नेगर्म[14]
ता रख न सके कोई मिरे हर्फ़ पे अंगुश्त।

१—सूक्ष्मता, लालित्य। २—स्थूलता, मालिन्य। ३—ताँबे का कसाव। ४—वसंत वायु का दर्पण। ५—समुद्र के ज्वार का सामना करने वाला। ६—तट का आत्माभिमान। ७—झूठ, व्यर्थ। ८—खुराक। ९—आकाश। १०—मोती पहनने योग्य ११—उंगली। १२—यात्रा के समय। १३—दिल की जलन १४—जलते हुए शेर

:: ४२ ::

जौर[1] से बाज़ आए पर बाज़ आएँ क्या
कहते हैं हम तुझको मुँह दिखलाएँ क्या।

रात दिन गर्दिश[2] में हैं सात आस्माँ
हो रहेगा कुछ न कुछ घबराएँ क्या।

लाग[3] हो तो उसको हम समझें लगाव
जब न हो कुछ भी तो धोका खाएँ क्या।

हो लिये क्यों नामावर[4] के साथ साथ
यारब! अपने ख़त को पहुँचाएँ क्या।

मौजे-ख़ूँ[5] सर से गुज़र ही क्यों न जाय
आस्तान-यार[6] से उठ जायँ क्या?

१—जफ़ा, अत्याचार। उसने जफ़ा करना छोड़ दिया पर अब पिछली जफ़ाओं के पश्चात्ताप के कारण कहता है कि हम मुँह क्या दिखाएं। इसीलिये कहते है कि अपना सुन्दर मुखड़ा न दिखलाना भी तो एक अत्याचार ही है। अर्थात् वह जफ़ाएं करना छोड़कर भी जफ़ा किये जा रहा है। २—चक्कर। धैर्य और संतोष पर दृष्टि रख कर कहते हैं कि सातों आसमान रात दिन चक्कर काट रहे है। कुछ न कुछ हमारे भले के लिये भी हो ही जायगा। इसलिये घबराएँ क्यो? ३—दुश्मनी। ४—पत्रवाहक। अर्थात् पत्रवाहक के साथ हम व्यर्थ ही चले आये। क्या अपना पत्र हमे ही पहुँचाना होगा? यदि हमें ही आना था तो पत्रवाहक की क्या जरूरत थी? ५—ख़ून की लहर। ६—यार की चौखट। अर्थात् एक बार प्रेम करके उसे छोड़ना बड़े शर्म की बात है। अब तो चाहे ख़ून की नदी में ही नहाना पड़े हम उसे (प्रिय को) न छोड़ेंगे

उम्र भर देखा किया मरने की राह
मर गये पर देखिए दिखलाएँ क्या ।[1]

पूछते हैं वह कि 'ग़ालिब, कौन है ?
कोई बतलाओ कि हम बतलाएँ क्या ?

:: ४३ ::

इशरते-क़तरा[2] है दरिया में फ़ना[3] हो जाना
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना ।

अब जफ़ा से भी हैं महरूम[4] हम अल्लाह अल्लाह
इस क़दर दुश्मने-अरबाबे-वफ़ा[5] हो जाना ।

जोफ[6] से गिरिया[7] मुबद्दल[8] ब-दमे-सर्द हुआ
बावर[9] आया हमें पानी का हवा हो जाना ।

है मुझे अब्रे-बाहरी[10] का बरस कर खुलना
रोते-रोते ग़मे-फ़ुरक़त में फ़ना[11] हो जाना ।

१—कहते हैं कि जीवन पर्यन्त तो उसने (प्रिय ने) ऐसा व्यवहार किया कि मरने की राह देखते रहे परन्तु अब मर गए हैं तब देखें और कौन सी मुसीबत लाता है । २—बूँद की खुशी । ३—मिल जाना, लीन हो जाना । ४—वंचित । ५—वफ़ा करने वालों, प्रेमियों का दुश्मन । ६—निर्बलता । ७—रुदन । ८—परिवर्तित । ९—विश्वास । अर्थात् दुर्बलता के कारण मेरा रोना ठंडी आहों में बदल गया और अब मुझे विश्वास हो गया कि पानी हवा में बदल जाता है । १०—बसन्त के बादल । ११—मिट जाना, मर जाना । कहते हैं कि जिस प्रकार बसन्त के बादल छाने पर अच्छे लगते हैं और जब बरस कर खुल जायें तब भी वातावरण बड़ा मनोहर लगता है इसी प्रकार मुझे तेरे वियोग में रोना भी अच्छा लगता है और रोते रोते मर जाऊ तो यह भी मेरे लिए आनन्द की बात होगी ।

:: ४४ ::

फिर हुआ वक़्त, कि हो बाल कुशा मौजे-शराब
दे बते-मै[1] को दिलो-दस्ते-शना[2] मौजे-शराब।

पूछ मत, वजहे-सियह मस्ति-ए-अरबाबे-चमन[3]
साय-ए-ताक[4] में होती है हवा, मौजे-शराब।

जो हुआ ग़र्क़-ए-मै,[5] बख़्ते-रसा[6] रखता है
सर से गुज़रे प भी, है बाले-हुमा मौजे-शराब।

है यह बरसात वो मौसम, कि अजब क्या है, अगर
मौजे-हस्ती को करे फ़ैजे-हवा, मौजे-शराब।

चार मौज उठती है तूफ़ाने तरब[8] से हरसू[9]
मौजे-गुल,[10] मौजे-शफ़क़[11], मौजे-सबा[12] मौजे-शराब[13]।

जिस क़दर रूहे-नबाती[14] है जिगर तश्न-ए-नाज़[15]
दे है तस्की बदमे-आबे-बक़ा[16] मौजे-शराब।

बस कि दौड़े है रगे-ताक में ख़ूं हो हो कर
शहपरे-रंग[17] से है बाल कुशा, मौजे-शराब।

मौज-ए-गुल से चराग़ां है, गुज़रगाहे-ख़याल
है तसव्वुर में ज़िबस[18] जल्वानुमा मौजे-शराब।

१—मदिरा की सुराही। २—तैरने का साहस। ३—चमन वालों की बदमस्ती का कारण। ४—अंगूर-लता की छाँह। ५—शराब मे डूबा हुआ। ६—सौभाग्य। ७—हुमा के फैले हुए पंख। ८—हर्ष का तूफान। ९—चारों ओर। १०—फूलों की तरंग। ११—अरुणोदय की तरंग। १२—मस्त हवा की तरंग। १३—मदिरा की तरंग। १४—वनस्पति की आत्मा। १५—उगने तथा फलने-फूलने की प्यासी। १६—अमृत का घूंट। १७—रंग के पंख १८

नश्शे के पर्दे में है मेहवे-तमाशा-ए-दिमाग़[1]
बस कि रखती है सरे-नश्वो-नुमा[2] मौजे-शराब ।

एक आलम प है, तूफानि-ए-कैफ़ियते-फ़स्ल[3]
मौज-ए-सब्ज़-ए-नौख़ेज़[4] से ता मौजे-शराब ।

शर्हे-हंगाम-ए-हस्ती[5] है जिहे[6]-मौसमे-गुल
रहबरे-क़तरा बदरिया है, खुशा मौजे-शराब ।

होश उड़ते हैं मिरे, जल्व-ए-गुल देख 'असद'
फिर हुआ वक़्त, कि हो बाल कुशा मौजे-शराब ।

:: ४५ ::

रहा गर कोई ता क़यामत, सलामत
फिर इक रोज़ मरना है, हज़रत सलामत ।

जिगर को मिरे इश्क़े-ख़ूनाबा[7] मशरब[8]
लिखे है खुदावन्दे-नेमत सलामत ।

अलर्रग़मे-दुश्मन,[9] शहीदे-वफ़ा-हूँ
मुबारक मुबारक सलामत सलामत ।

नहीं गर सरो-बर्गे-इदरा के-मानी[10]
तमाशा-ए-नैरंगे-सूरत[11] सलामत ।

१—मनोरंजन या सैर में लिप्त । २—उगने और बढने की उमंग । ३—ऋतु की मस्तता का तूफान । ४—नई हरियाली की तरंग । ५—अस्तित्व की धूमधाम की व्याख्या । ६—वाह वाह । ७—लाल रक्त का प्रेमी । ८—पेशा । ९—शत्रु के विरुद्ध । १०—संसार के तत्व को समझने की सामग्री । ११—रूप की जादूगरी का तमाशा

:: ४६ ::

गुलशन में बन्दोबस्त बरंगे-दिगर, है आज
कुमरी[1] का तौक़ हलक़-ए-बेरूने-दर,[2] है आज।

आता है एक पारए-दिल[3] हर फ़ुगां के साथ
तारे-नफ़स[4], कमन्दे-शिकारे-असर,[5] है आज।

ऐ आफ़ियत, किनारा कर, ऐ इन्तिज़ाम, चल
सैलावे गिरिया[6] दरपै-ए-दीवारो-दर[7], है आज।

:: ४७ ::

लोहम मरीजे-इश्क़[8] के तीमारदार हैं
अच्छा अगर न हो, तो मसीहा का क्या इलाज।

:: ४८ ::

नफ़स न अंजुमने-आरजू[9] से बाहर खेंच
अगर शराब नहीं, इन्तजारे-सागर खेंच।

१—फाख्ता जैसी एक चिड़िया। २—दरवाजे के बाहर का क्षेत्र। ३—दिल का टुकड़ा। ४—साँस की डोरी। ५—प्रभाव का शिकार करने वाला फन्दा। ६—अश्रु-बाढ़। ७—घर बार के ढा देने पर तुला हुआ। ८—प्रेम का रोगी। ९—अभिलाषा की मण्डली।

कमाले-गर्मि-ए-सई-ए-तलाशे-दीद[१] न पूछ
बरंगे-खार[२] मिरे आईने से जौहर खेंच

तुझे बहाने-ए-राहत है, इन्तिजार, ऐ दिल
किया है किसने इशारा, कि नाजे-बिस्तर[३] खेंच।

तिरी तरफ़ है बहसरत नजार-ए-नर्गिस[४]
बकोरि-ए-दिलो-चश्मे-रक़ीब[५]; सागर खेंच।

बनीम ग़मजा[६] अदा कर, इश्क़े-बरीअते-नाज़[७]
नियामे-पर्द-ए-जख्मे-जिगर[८] से खंजर खेंच।

मिरे क़दह में है सहबा-ए-आतशे-पिंहा[९]
बरू-ए-सफ़रा[१०], कबावे-दिले-समंदर[११] खेंच।

१—माशूक के दर्शन की खोज मे प्रयत्न की पराकाष्ठा। २—काँटे की तरह। ३—विस्तर पर आराम कर। ४—नरगिस नामक फूल की नजर। ५—प्रतिद्वन्द्वी के अंधे दिल और अंधी आँख के नाम पर। ६—आँख के आधे इशारे से। ७—पूरी तरह नाज कर। ८—जिगर का जख्म जो तलवार की म्यान की तरह हो। ९—दिल की आग की मदिरा। १०—दस्तरख्वान पर। ११—अग्निकीट के दिल के कबाब।

:: ४९ ::

मुँद गईं खोलते ही खोलते आँखें 'ग़ालिब'
यार लाए मेरी बलीं[1] पै उसे हर किस वक़्त ।

:: ५० ::

हुस्न ग़मज़ा[2] की कशाकश[3] से छुटा मेरे बाद
बारे आराम से है अहले-जफ़ा[4] मेरे बाद ।

शमअ बुझती है तो उसमें से धुआँ उठता है
शोलए इश्क़ सियह पोश हुआ मेरे बाद ।[5]

कौन होता है हरीफ़े-मए-मर्द-अफ़गने-इश्क़[6]
है मुकर्रर लबे-साक़ी पै सला मेरे बाद ।

१—सिरहाने । २—नाज़ व अदा । ३— प्रयासों : ४—जफ़ा करने वालों । अर्थात् मैं जब तक जीवित था तब तक हर एक हसीन मुझे लुभाने के लिए नाज नखरे का अभ्यास करता रहता था, पर मेरी मृत्यु के बाद उन्हें इन झंझटों से छुटकारा मिल गया। अब वे जफा करने वाले आराम से हैं । ५—सियहपोश के माने हैं काले कपड़े पहनना और काले कपड़े किसी शोक का लक्षण माने जाते हैं। कहते है कि प्रेम की लपट भी अब शमा से बिछुड़ने पर शोक का रूप धारण करने लगी है, क्योंकि शमा बुझने पर जो धुआँ उठता है वह भी एक शोला होता है । ६—हरीफ साथी को भी कहते हैं और प्रतिद्वन्दी को भी । मए-मर्द-अफ़गने-इश्क, अर्थात् इश्क की शराब जो मर्द को गिरा देती है । मुकर्रर का अर्थ है दो बार और सला आवाज़ देने को कहते है। यानी साकी दो-दो आवाज लगाता है कि कोई है जो प्रेम की उस मदिरा का पान करे जो पुरुष को अपने तीव्र नशे से गिरा देती है। मतलब साफ है कि मैं नहीं रहा अतः साक़ी को बार-बार ललकारना पड़ता है पर कोई सामने नहीं आता ।

ग़म से मरता हूँ कि इतना नहीं दुनिया में कोई
कि करे ताज़ियते-मेह्र-ओ-वफ़ा[1] मेरे बाद।
आये है बेकसिये-इश्क पै रोना 'ग़ालिब'
किसके घर जायगा सैलाबे-बला[2] मेरे बाद।

:: ५१ ::

घर जब बना लिया तेरे दर[3] पर कहे बग़ैर
जानेगा अब भी तू न मेरा घर कहे बग़ैर।
कहते है जब रही न मुझे ताक़ते-सुख़न[4]
"जानूँ किसी के दिल की मैं क्योंकर कहे बग़ैर।"
काम उससे आ पड़ा है कि जिसका जहान में
लेवे न कोई नाम सितमगर कहे बग़ैर।
जी में ही कुछ नहीं है हमारे वगर[5] न हम
सर जाय या रहे न रहे पर कहे बग़ैर।
छोड़ूँगा में न उस बुते-काफ़िर का पूजना
छोड़े न ख़ल्क़[6] गो मुझे काफ़िर कहे बग़ैर।

१—ताजियत = किसी के मरने पर शोक प्रकट करने को ताजियत कहते हैं। मेह्र-ओ-वफा = प्रेम और वफादारी। कवि अपने को प्रेम और वफा का सब से बड़ा और निकटतम सम्बन्धी समझता है और जानता है कि उसके मरने पर दोनों को बड़ा दुख होगा। उसे इस बात की चिंता है कि वह मरा तो इनके पास शोक सन्ताप प्रकट करने कौन जायगा।

२—विपदाओं की बाढ़। प्रेम को ही यहाँ सैलाबे-बला कहा है। कहते हैं प्रेम की विवशता पर रोना आता है क्योंकि मेरे बाद बेचारा किसके घर जायगा। ३—द्वार। मतलब यह है कि मैंने अब तेरे दरवाज़े पर ही अपना घर बना लिया है। पहले तू यह बहाना करता था कि मेरा घर नहीं जानता। अब क्या बहाना करेगा जब कि तुझे अपने घर में भी मेरे घर के सामने से होकर जाना पड़ेगा। ४—बोलने की शक्ति। जब मैं इतना दुर्बल हो गया कि बोल नहीं पाता तब कहते हैं कि बिना तुम्हारे कहे मैं तुम्हारे मन की बात कैसे जान सकता हूँ। ५—वरना, वरन्। ६—सर्व साधारण।

मक़सद है नाज़-ओ-ग़मज़ा वले गुफ़्तगू में काम*
चलता नहीं है दशना-ओ खञ्जर कहे बग़ैर।

हर चन्द हो मुशाहिदए-हक़[1] की गुफ्तगू
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र[2] कहे बग़ैर।

बहरा हूँ मैं तो चाहिये दूना हो इलतफ़ात[3]
सुनता नहीं हूँ बात मुकर्रर कहे बग़ैर।

'ग़ालिब' न कर हुजूर[4] में तू बार बार अर्ज़
ज़ाहिर है तेरा हाल सब उन पर कहे बग़ैर।

:: ५२ ::

क्यों जल गया न ताबे-रुखे-यार[5] देखकर
जलता हूँ अपनी ताक़ते-दीदार[6] देखकर।

* कहते हैं कि हमारा मतलब तो है प्रिय के नाज अन्दाज़ से, किन्तु बातचीत में लोगों को समझाने के लिये उन्हें दशना (छोटा खञ्जर) और खञ्जर कहना पड़ता है। क्योंकि उसके नाज अन्दाज़ भी कुछ कम तीखे या प्राणघातक नहीं होते। १—ज्ञान ध्यान की बातें। २—शराब और प्याले। सूफ़ी शायर भी अपनी शायरी में शराब और प्याले की उपमा देते हैं। उसी ओर इस शेर में भी संकेत है। ३—स्नेह, कृपा। गालिब भी आख़िरी उम्र में कम सुनने लगे थे, इस शेर में इस बात का भी उल्लेख है। कहते हैं कि मैं बहरा हूँ इस लिये मुकर्रर (दो बार) कोई बात कहने से सुनता हूँ, अतः मुझ पर तेरी कृपा और स्नेह औरों की उपेक्षा दूना होना चाहिए। ४—हुजूर से यहाँ मतलब है बादशाह बहादुर शाह से जो स्वयं कवि थे और कवियों की कद्र करते थे। ५—प्रिय के मुखड़े की ज्योति। ६—देखने की शक्ति। कहते हैं यदि प्रिय का सुन्दर मुखड़ा देख कर ही जल गया होता तो कितने गर्व की बात होती। परन्तु उसके ज्योतिर्मय मुखड़े को देख कर तो जला नहीं, अब अपने देखने की शक्ति देख इस दुख की आग में जल रहा हूँ कि क्यों न पहले ही जल गया।

आतिश परस्त[1] कहते है अहले-जहाँ[2] मुझे
सरगर्मे-नालाहाय शरर-बार[3] देखकर ।

वा हसरता[4] कि यार ने खींचा सितम से हाथ
हमको हरीसे-लज्जते-आज़ार[5] देख कर ।

बिक जाते है हम आप मताए-सुख़न[6] के साथ
लेकिन अयारे[7] तबए-ख़रीदार[8] देख कर ।

ज़ुन्नार[9] बाँध सबहए सद दाना[10] तोड़ डाल
रह रौ[11] चले है राह को हमवार[12] देख कर ।

इन आबलों से पाँव के घबरा गया था मैं
जी ख़ुश हुआ है राह को पुरख़ार[13] देखकर

गिरनी थी हम पै बर्क़ तजल्ली[14] न तूर[15] पर
देते है बादा[16] जर्फ-क़दहख़्वार[17] देख कर ।

१—अग्निपूजक । २—दुनिया वाले । ३—आग बरसाने वाले रुदन में तल्लीन । ४—अफ़सोस । ५—दुख के स्वाद का लोभी । ६—सुखन (कविता) के धन । ७—कसौटी । ८—ग्राहक की रुचि । कहते हैं कि हम शायरी के क़दरदानों के स्वयं गुलाम बन जाते है लेकिन उनकी रुचि की कसौटी को पहले जाँच लेते हैं । बिक जाना मुहावरा है जिसके मानी है गुलाम बन जाना । ९—जनेऊ । १०—सौ दानों वाली माला । ११—पथिक । १२—समतल । १३—काँटों से भरा । १४—दैवी ज्योति की बिजली । १५—एक पहाड़ जिस पर मूसा को ईश्वर के दर्शन हुए । १६—शराब । १७—पीने वाले का प्याला । मूसा को ईश्वर ने दर्शन देना चाहा पर मूसा उसकी चमक ही देख कर मूर्छित हो गये थे । गालिब कहते हैं कि उस दैवी ज्योति को तूर पहाड़ की जगह हम जैसे प्रेमी पर बिजली बन कर गिरना था क्योंकि हम बेहोश न होते । शराबी का प्याला देख कर ही उसे शराब देनी चाहिये । मतलब यह है कि ईश्वर ने अपने दर्शन देने के लिए मूसा की जगह हमें क्यों न चुना ।

सर फोड़ना वो 'ग़ालिबे-शोरीदा-हाल[1]' का
याद आ गया मुझे तेरी दीवार देख कर।

:: ५३ ::

है बस कि हर एक उनके इशारे मे निशाँ और
करते हैं मुहब्बत तो गुजरता है गुमाँ[2] और।
यारव वो न समझे है न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको जो न दे मुझको जबाँ और।
तुम शह्र मे हो तो हमें क्या ग़म? जब उठेंगे
ले आयेंगे बाजार से जाकर दिलो जाँ और।
मरता हूँ इस आवाज पै, हर चन्द सर उड़ जाय।
जल्लाद को, लेकिन वो कहे जाये कि 'हाँ और''
हर चन्द सुबुक दस्त[3] हुए बुत-शिकनी[4] में
हम है तो अभी राह मे है संगे-गराँ और।
लोगों को है खुरशीदे-जहाँ[5] ताब का धो।
हर रोज दिखाता हूँ मैं एक दाग़े निहाँ[6] और।
पाते नहीं जब राह तो चढ़ जाते हैं नाले
रुकती है मेरी तबअ[7] तो होती है रवाँ[8] और।
है और भी दुनिया में सुखनवर[9] बहुत अच्छे
कहते है कि 'ग़ालिब' का है अन्दाजे-बयाँ[10] और।

१—परेशान हालत वाला, पागल। २—संदेह। उसके (प्रिय के) प्रत्येक संकेत मे एक नवीनता और नया अर्थ होता है अतः जब वह प्रेम करता है तब भी मुझे कुछ और सन्देह होता है। ३—हाथ हलका या खाली होना। ४—हमने बहुत से कठिनाइयों के बुत तोड़े परन्तु यह न समझो कि कठिनाइयों का अन्त हो गया है। हम जीवित हैं तो मार्ग मे बहुत से भारी पत्थर आ जायँगे। ५—सूर्य जो संसार को जगमगाता है। ६—गुप्त दाग़। ७—तबिअत। ८—प्रवाहित। ९—कवि १०—कहने का ढंग वर्णन शली

:: ५४ ::

'असद' बिस्मिल है किस अन्दाज का क़ातिल से कहता था
कि "मश्क़े-नाज़ कर ख़ने-दो-आलम मेरी गर्दन पर।"*

:: ५५ ::

लाज़िम था कि देखो मेरा रस्ता कोई दिन और
तनहा गये क्यों, अब रहो तनहा कोई दिन और।[1]

मिट जायगा सर गर तेरा पत्थर न घिसेगा
हूँ दर पै तेरे नासिया फ़रसा[2] कोई दिन और।

आए हो कल और आज ही कहते हो कि जाऊँ
माना कि हमेशा नहीं, अच्छा कोई दिन और।

जाते हुए कहते हो क़यामत को मिलेंगे
क्या खूब, क़यामत का है गोया कोई दिन और।

---

* अर्थात् घायल हो जाने पर भी प्रिय से कहता है कि मैंने न केवल अपना ख़ून माफ़ किया बल्कि तू अपने नाज की मश्क़ (अभ्यास) किये जा, मैं दो आलम (लोक-परलोक) का खून भी अपनी गर्दन पर ले लूँगा। तुझसे कोई न पूछेगा।

१—यह ग़जल वास्तव में मर्सिया है, जो मिर्ज़ा ग़ालिब ने नवाब जैनुल आबिदीन खाँ 'आरिफ़' की मृत्यु पर लिखी है। 'आरिफ़' मिर्ज़ा ग़ालिब की बहन के बेटे थे। ग़ालिब के कोई संतान न थी इसलिये ग़ालिब उन्हे बेटे की तरह मानते थे। आरिफ़ अच्छे शायर भी थे इस कारण मिर्ज़ा ग़ालिब को उनकी जवान मौत का और भी अधिक दुख हुआ। इस गज़ल के एक एक शब्द मे ग़ालिब ने अपने हृदय की वेदना को भर दिया है।

२—सिर झुकाता। इस शेर मे 'हूँ दर पै तेरे' से शायर का मतलब है क़ब्र के पत्थर का जिक्र पहले ही आ चुका है। कहते हैं तेरी क़ब्र का पत्थर न घिसा तो सिर तो घिस ही जायगा

हाँ, ए फ़लके-पीर[1] जवाँ था अभी 'आरिफ़'
क्या तेरा बिगड़ता जो न मरता कोई दिन और।

तुम माहे-शबे चार दहम[2] थे मेरे घर के
फिर क्यों न रहा घर का वो नक़शा कोई दिन और।

तुम कौन से थे ऐसे खरे दाद-ओ-सतद[3] के।
करता मलकुलमौत[4] तक़ाजा कोई दिन और।

मुझसे तुम्हें नफ़रत सही 'नय्यर'[5] से लड़ाई
बच्चों का भी देखा न तमाशा कोई दिन और।

गुज़री न बहर हाल ये मुद्दत खुश-ओ-ना खुश
करना था जवाँ मर्ग गुज़ारा कोई दिन और।[6]

नादां हो जो कहते हो कि क्यों जीते हो 'ग़ालिब'
क़िस्मत में है मरने की तमन्ना कोई दिन और।[7]

:: ५६ ::

आह को चाहिये एक उम्र असर होने तक
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ के सर[8] होने तक।

१—बूढ़ा आसमान। २—चौदहवीं रात का चाँद। ३—लेन-देन। ४—यमदूत। ५—नवाब जियाउद्दीन अहमद खाँ 'नय्यर' (जिनका दूसरा तखल्लु 'रख्शाँ' था) रियासत लोहारू के रईस थे और वे भी आरिफ को बहुत मानते थे। ६—'गुजरी न' का यहाँ अर्थ है गुजर ही तो गई', कहते हैं इतने दिन तो सुख या दुख में जीवन बिता दिया, ऐ जवानी में मरने वाले ! कुछ दिन और भी इसी प्रकार जीवन बिताना था। ७—तुम नादान और ना समझ हो जो पूछते हो कि गालिब क्यों जी रहे हो। मै क्या करूँ, अभी मेरे भाग्य में कुछ दिन मरने की तमन्ना करते रहना लिखा है इसलिए मरूँ तो कैसे मरूँ। ८—ज़ुल्फ़ के सुलझने।

आशकी सब्र तलब और तमन्ना बताब
दिल का क्या रंग[१] करूं खूने जिगर होने तक

हमने माना कि तग़ाफुल[२] न करोगे लेकिन
ख़ाक हो जायेंगे हम तुमको ख़बर होने तक।

ग़मे-हस्ती[३] का 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग[४] इलाज
शमअ हर रंग में जलती है सहर[५] होने तक।

:: ५७ ::

मुझको दयारे-गैर[६] में मारा वतन से दूर
रख ली मेरे खुदा ने मेरी बैकसी की शर्म।

:: ५८ ::

वह फ़िराक़ और वह विसाल कहाँ
वह शब-ओ-रोज ओ माह-ओ-साल[७] कहाँ।

फुरसते कारो-बारे-ओ शौक़ किसे
ज़ौके-नज्ज़ारए-जमाल[८] कहां !

दिल तो दिल वह दिमाग़ भी न रहा।
शोरे सौदाए-खत-ओ खाल कहाँ।[९]

१—सँभालूँ। २—भूलना, उपेक्षा करना, बेपरवाही करना। ३—जीवन के दुख। ४—मृत्यु के सिवा। ५—सुबह। ६—परदेश। ७—रात-दिन, महीना-वर्ष। ८—रूप के दर्शन की रुचि। ९—सौदा दिमाग में होता है। ग़ालिब कहते हैं कि दिल की बात तो छोड़ो, अब वह दिमाग भी नहीं रहा जिसमें किसी के खत-ओ खाल (नख शिख) देख कर प्रम का पैदा होता था

थी वो एक शख़्स के तसव्वुर से[1]
अब वो रअनाइये-ख़याल[2] कहाँ।

ऐसा आसाँ नहीं लहू रोना
दिल में ताक़त जिगर में हाल[3] कहाँ।

हमसे छूटा क़मार ख़ानए-इश्क़[4]
वाँ जो जाएँ गिरह में माल कहाँ।

फ़िक्रे-दुनिया में सर खपाता हूँ
मैं कहाँ और यह बवाल कहाँ।

मुज़महिल[5] हो गए क़वा[6] 'ग़ालिब'
अब अनासिर[7] में एतदाल[8] कहाँ।

:: ५९ ::

की वफ़ा हम से तो ग़ैर उसको जफ़ा कहते हैं
होती आई है कि अच्छों को बुरा कहते हैं।

आज हम अपनी परेशानिये-ख़ातिर उनसे
कहने जाते तो हैं पर देखिये क्या कहते हैं।

अगले वक़्तों के हैं ये लोग इन्हें कुछ न कहो
जो मय-ओ-नग़मा को अन्दोह-रुबा[9] कहते हैं।

१—कल्पना। २—विचारों की सुन्दरता। ३—हालत, अर्थात अब जिगर की भी वह हालत नहीं है। ४—प्रेम का जुआ खाना। ५—शिथिल। ६—अंग, इन्द्रियाँ। ७—अनासिर पंचभूत को कहते हैं, यहाँ कवि का मतलब शारीरिक स्वास्थ्य से है। ८—संतुलन। ९—दर्द दुख दूर करने वाली

दिल में आजाए है होती है फ़ुरसत गश से
और फिर कौन से नाले को रसा कहते हैं।*

:: ६० ::

मेह्रबाँ होके बुला लो मुझे चाहो जिस वक़्त
मैं गया वक़्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ।

जोफ़[1] में ताअनए-अग़ियार[2] का शिकवा क्या है
बात कुछ सर तो नहीं है कि उठा भी न सकूँ।

ज़ह्र मिलता ही नहीं मुझको सितमगर वरना
क्या कसम है तेरे मिलने की कि खा भी न सकूँ।

:: ६१ ::

हम से खुल जाओ ब वक़्ते-मयपरस्ती[3] एक दिन
वरना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्र. मस्ती[4] एक दिन।

कर्ज की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ
रंग लाएगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन।

नगमाहाए-दिल को भी ए दिल ग़नीमत जानिये
बे सदा हो जायगा यह साजे-हस्ती एक दिन।

धौल धप्पा उस सरापा नाज़ का शेवा[5] नहीं
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेश दस्ती[6] एक दिन।

---

* 'दिल में आजाए है' से यहाँ कवि का मतलब है प्रिय के मन में आजाने से। अर्थात् मुझे गश (मुर्छा) से जब फ़ुरसत मिलती है तब प्रिय मेरे हृदय में आता है। इससे स्पष्ट है कि मेरे नाले (रुदन) की पहुँच उस तक हो जाती है नहीं तो वह हृदय में भी न आता।

१—दुर्बलता। २—गैरों के व्यंग बाण। ३—शराब पीते समय का बहाना करके ५ ६ छेड़खानी पहल

:: ६२ ::

आबरू क्या ख़ाक उस गुल की, की गुलशन में नहीं
है गरेबाँ नंगे-पैराहन[1] जो दामन में नहीं।

ज़ोफ़ से, ऐ गिरिया, कुछ बाक़ी मिरे तन मे नहीं
रंग होकर उड़ गया, जो ख़ूँ कि दामन में नही।

हो गए है जम्अ अज्ज़ाए - निगाहे - आफ़ताब[2]
ज़र्रे, उसके घर की दीवारों के रौज़न[3] मै नहीं।

क्या कहूँ तारीकिए-ज़िन्दाने-ग़म,[4] अँधेर है
पम्बा[5] नूरे-सुबह से कम, जिसके रौज़न में नहीं।

रौनके-हस्ती[6] है, इश्के-ख़ाना-वीरां साज़ से
अंजुमन बे शम्अ है, गर बर्क़ ख़िरमन[7] में नहीं।

ज़ख़्म सिलवाने से मुझ पर चारा-जोई[8] का है तान[9]
ग़ैर समझा है कि लज्जत ज़ख़्मे-सोज़न[10] में नहीं।

बस कि है हम इक बहारे नाज़ के मारे हुए
जल्वए-गुल के सिवा, गर्द अपने मदफ़न[11] में नहीं।

क़तरा क़तरा इक हयूला[12] है, नए नासूर का
ख़ूं भी ज़ौक़े-दर्द से फ़ारिग़[13] मिरे तन में नहीं।

१—पहनावे को लज्जित करने वाला। २—सूरज की टूटी हुई किरणें। ३—सुराख़। ४—विषाद के बन्दीगृह का अंधकार। ५—रूई का फाहा। ६—सुबह का प्रकाश ७—खलिहान, जमीन की शोभा। ८—उपचार करवाना। ९—ताना, उलाहना। १०—सूई का घाव। ११—दफ़न करने का स्थान। १२—भौतिक तत्व। १३—मुक्त।

ले गई साक़ी की नख़वत,[१] कल्ज़ुम[२]-आशामी[३] मेरी
मौजे-मै की आज रग मीना की गर्दन में नहीं।

हो फ़िशारे-ज़ोफ़[४] में क्या नातवानी[५] की नमूद[६]
क़द के झुकने की भी गुंजाइश मेरे तन में नहीं।

थी वतन में शान क्या 'ग़ालिब' कि हो ग़ुर्बत[७] में क़द्र
बेतकल्लुफ़ हूँ वो मुश्ते-ख़स[८], कि गुलख़न[९] में नहीं।

:: ६३ ::

ओहदे से मदहे-नाज़[१०] के, बाहर न आ सका
गर इक अदा हो, तो उसे अपनी क़ज़ा[११] कहूँ।

हल्क़े हैं चश्म-हाए-कुशादा[१२] बसूए-दिल[१३]
हर तारे-ज़ुल्फ़[१४] को निगाहे-सुरमा सा कहूँ।

मैं और सद हज़ार नवाए-जिगर ख़राश[१५]
तू, और एक वो न शुनीदन,[१६] का क्या कहूँ।

ज़ालिम मेरे गुमाँ से मुझे मुनफ़इल[१७] न चाह
हय, हय, ख़ुदा-न-करदा,[१८] तुझे बेवफ़ा कहूँ।

१—घमण्ड। २—सागर। ३—पीना। ४—दुर्बलता की विकलता। ५—निर्बलता। ६—विकास। ७—परदेश। ८—मुट्ठी भर घास। ९—आग की भट्ठी। १०—सौन्दर्य की प्रशंसा। ११—मौत। १२—विस्फारित आँखें। १३—दिल की ओर। १४—एक-एक बाल। १५—जिगर को चीरने वाली आवाज। १६—सुनना। १७—पश्चात्ताप करने वाला। १८—ख़ुदा न करे।

:: ६४ ::

मानए-दश्त नवर्दी[1] कोई तदबीर नहीं
एक चक्कर है मेरे पाँव में जंजीर नहीं
हस्सरते-लज्ज़ते-आज़ार[2] रही जाती है
जादए-राहे-वफ़ा[3] जुज़ दमे-शमशीर[4] नहीं।
सर खुजाता है जहाँ ज़ख्में सर अच्छा हो जाय
लज्जते-संग[5] ब अन्दाज़ए-तक़रीर[6] नहीं।
'ग़ालिब' अपना ये अक़ीदा[7] है बक़ौले-'नासिख़'
आप बेबहरा[8] है जो मोतक़िदे-'मीर'[9] नहीं।

:: ६५ ::

बरशगाले-गिरियए-आशिक़[10] है देखा चाहिये
खुल गई मानिन्दे-गुल सौ जा[11] से दीवारे-चमन
उलफ़ते-गुल से ग़लत है दावए-वारस्तगी[12]
सर्व है बावस्फ़े-आज़ादी[13] गिरफ्तारे चमन।

:: ६६ ::

जहाँ तेरा नक़्शे क़दम[14] देखते है
ख़याबाँ[15] ख़याबाँ एरम[16] देखते हैं।

१—जंगल में घूमने से रोकने वाली। २—दुख के स्वाद की हसरत। ३—वफ़ा का मार्ग। ४—तलवार की धार। ५—पत्थर खाने का स्वाद। ६—अकथनीय। ७—विश्वास। ८—अज्ञानी। ९—मीर का भक्त। मीर तक़ी 'मीर' उर्दू के बहुत बड़े कवि हुए हैं। १०—प्रेमी के रुदन से बरसात। ११—जगह। १२—रिहाई। १३—आजादी के बावजूद। सर्व या सरो के वृक्ष को सर्व-आज़ाद कहा जाता है। इसीलिये 'ग़ालिब' कहते हैं कि वह आज़ाद होने पर भी फूलों के प्रेम में चमन का बन्दी है। १४—पदचिन्ह। १५—क्यारी या वाटिका १६ स्वर्ग

बना कर फ़कीरों का हम भेस 'ग़ालिब'
तमाशाए-अहले-करम[1] देखते हैं।

:: ६७ ::

ताफिर[2] न इन्तज़ार में नींद आए उम्र भर
आने का वादा कर गये आये जो ख्वाब में।

क़ासिद के आते-आते ख़त एक लिख रखूं
मैं जानता हूँ जो वो लिखेंगे जवाब में।

मुझ तक कब उनकी बज्म में आता था दौरे-जाम
साक़ी ने कुछ मिला न दिया हो शराब में।

जो मुनकिरे-वफ़ा[3] हो फ़रेब उस पै क्या चले
क्यों बदगुमां हूँ दोस्त से दुश्मन के बाब[4] में।

मै मुज़्तरिब हूँ वस्ल में ख़ौफ़े-रक़ीब से
डाला है तुम को वह्म ने किस पेच-ओ-ताब मे।[5]

मैं और हज़्ज़े वस्ल[6] ख़ुदा साज़[7] बात है
जाँ नज्र देनी भूल गया इज़तराब में।

१—दानी। २—ताकि, फिर। ३—वफ़ा से इनकार करने वाला। ४—बारे में। कहते हैं कि प्रिय तो जानता ही नहीं कि प्रीत निभाना किसे कहते हैं इसलिये उसको कोई धोखा नहीं दे सकता। अतएव मुझे दुश्मन की ओर से निश्चित रहना चाहिये, क्योंकि वह भी उसे चकमा नहीं दे सकता। ५—बेचैन। इन पंक्तियों का अर्थ है कि मैं तो मिलन के समय रकीब के डर से घबरा रहा हूँ कि वह रंग में भंग न कर दे। पर तुमको किस सन्देह ने परेशानी मे डाल रखा है। ६—मिलन का आनन्द। ७—खुदा की ओर से। अर्थात् मैं तुमसे मिलने का आनन्द लेने योग्य कहाँ। मुझे तो इस खुशी मे मर जाना चाहिये था। पर मैं ऐसा घबरा गया कि तुम्हें अपने प्राणों की भेंट देना भी भूल गया

लाखों लगाव एक चुराना निगाह का
लाखों बनाव एक बिगड़ना अताब में ।*

वह नाला दिल में ख़स[१] के बराबर जगह न पाय
जिस नाला से शिगाफ़[२] वड़े आफ़ताब[३] में ।

'ग़ालिब' छुटी शराब पर अब भी कभी-कभी
पीता हूँ रोजे-अब्र[४]-ओ-शबे-माहताब[५] में ।

:: ६८ ::

हैराँ हूँ दिल को रोऊँ कि पीटूँ जिगर को मैं
मक़दूर[६] हो तो साथ रखूँ नौहागर[७] को मैं ।
छोड़ा[८] न इश्क़ ने कि तेरे घर का नाम लूँ
हर एक से पूछता हूँ कि जाऊँ किधर को मैं ।

---

* लगाव से मतलब है प्रेम । बनाव = बनाव सिंगार । अताब = क्रोध । कहते है कि प्रिय की लाखों लगावटें एक तरफ़ और निगाह चुराना एक तरफ़ । क्योंकि शर्म से नजर चुराना भी प्रेम ही के कारण होता है; और उसकी यह अदा बड़ी प्यारी होती है (इसी प्रकार लाखो बनाव श्रृंगार से प्रिय का रूप जितना निखर उठता है उस से कहीं अधिक सुन्दर वह तब लगता है जब वह गुस्से मे बिगड़ जाय ।

१—तिनके । २—दराड़ । ३—सूर्य । ४—जब बादल छाये हों वह दिन । ५—चाँदनी रात । ६—सामर्थ्य । ७—मातम करने वाला । कहते हैं कि मैं अकेले दोनो (दिल और जिगर) का मातम कैसे करूँ, क्योंकि दोनों समान रूप मे प्रिय हैं । सामर्थ्य हो तो एक मातम करने वाले को नौकर रख लूँ । मै दिल को रोऊँ और वह जिगर को रोये । ८—ईर्ष्या । ईर्ष्या वश इसलिये तेरे घर का नाम नही लेता कि औरों को भी तेरे ठिकाने का पता चल जायगा

जाना पड़ा रक़ीब के दर पर हज़ार बार
ए काश जानता न तेरी रह गुज़र[१] को मैं।
लो वह भी कहते हैं कि ये बे नंग-ओ नाम[२] है
यह जानता अगर तो लुटाता न घर को मैं।
चलता हूँ थोड़ी दूर हर एक तेज रौ[३] के साथ
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर[४] को मैं।
ख्वाहिश को अहमक़ों ने परस्तिश[५] दिया करार
क्या पूजता हूँ उस बुते-बेदादगर को मैं।
फिर बेख़ुदी मे भूल गया राहे-कूए-यार
जाता वगर न एक दिन अपनी खबर[६] को मैं।

:: ६९ ::

दोनों जहान देके वो समझे कि खुश रहा
याँ आ पड़ी ये शर्म की तकरार क्या करें।
थक थक के हर मुक़ाम पै दो चार रह गए
तेरा पता न पाएँ तो नाचार क्या करें।
क्या शमअ के नहीं है हवा ख्वाह अहले-बज़्म
हो ग़म ही जाँगुदाज तो ग़मख्वार क्या करें।*

१—रास्ता, गली। तुझे रक़ीब के घर जाते देख मैं समझा यही तेरे घर का रास्ता है, इस कारण हजार बार तुझे खोजने निकला पर हर बार रक़ीब के घर पहुँच गया। काश, मैंने तुझे इस रास्ते जाते न देखा होता। २—जिसका न घर द्वार हो न पता ठिकाना। ३—तीव्रगामी। ४—पथप्रदर्शक। ५—पूजा। ६—अपने आपको।

*शम्अ के शुभचिन्तक महफ़िल मे नहीं हैं, ऐसा बात नहीं है; पर उसका दुख ही जान को जलाने वाला है इसलिये वे क्या कर सकते हैं। शमअ और उसके दुख की आड़ में कवि अपने दुख की बात कह रहा है और अपने मित्रों की विवशता की ओर संकेत कर रहा है।

:: ७० ::

मत मर्दुमके-दीदा[1] में समझो ये निगाहें
है जम्अ सवेदाये-दिले-चश्म[2] में आहें।

:: ७१ ::

इश्क़ तासीर[3] से नौमीद[4] नहीं
जां-सुपारी[5] शजरे-बेद[6] नहीं।

सल्तनत दस्त बदस्त आई है
जामे-मै खातिमे-जमशेद[7] नहीं।

है तजल्ली[8] तेरी सामने-वजूद
जर्रा बे-परतवे-खुर्शीद[9] नहीं।

राज़े-मशूक न रुस्वा[10] हो जाय
वरना मर जाने में कुछ भेद नहीं।

गर्दिशे रंगे-तरब[11] से डर है
ग़मे-महरूमिए-जावेद[12] नहीं।

कहते है, जीते हैं उम्मीद पे लोग
हम को जीने की भी उम्मीद नहीं।

१—आँखों की पुतली। २—दिल के दाग की आँख। ३—प्रभाव। ४—निराशा। ५—जान निछावर करना। ६—बेंत का पेड़, निष्फल। ७—बादशाह जमशेद की अँगूठी। ८—आलोक, प्रकाश। ९—सूरज के प्रतिबिम्ब के बिना। १०—बदनाम। ११—हर्ष की अवस्था के परिवर्तनशील रंग। १२—हमेशा वंचित रहने का क्लेश।

:: ७२ ::

ज़िक्र मेरा, व बदी भी, उसे मंजूर नहीं
ग़ैर की बात बिगड़ जाय, तो कुछ देर नहीं।

वाद-ए-सैरे-गुलिस्तां[१] है खुशाताले-ए-शौक़[२]
मुश्द-ए-क़त्ल[३] मुक़द्दर है, जो मजकूर[४] नहीं।

शाहिदे-हस्ति-ए-मुतलक़[५] की कमर है आलम
लोग कहते हैं कि पर हमें मंजूर नहीं।

क़तरा अपना भी हक़ीक़त में है दरिया, लेकिन
हमको तक़लीदे-तुनुक ज़र्फ़ि-ए-मसूर[६] नहीं।

हसरत, ऐ ज़ौक़े-खरावी[७]; कि वो ताक़त न रही
इश्क़े-पुर अरबदा[८] की गौं[९] तने-रंजूर[१०] नहीं।

मैं जो कहता हूँ; कि हम लेंगे क़यामत में तुम्हें
किस रऊनत[११] से वो कहते है कि हम हूर नहीं।

ज़ुल्म कर, ज़ुल्म, अगर लुत्फ़ दिरेग़[१२] आता हो
तू तग़ाफ़ुल में किसी रंग से माज़ूर नहीं।

साफ़ दुर्दी कशे-पैमान-ए-जम[१३] है; हम लोग
वाए, वो बादा, कि अफ़शुर्द-ए-अंगूर[१४] नहीं।

१—बाग के सैर का वायदा। २—शौक का भाग्य। ३—कत्ल की खुशखबरी। ४—जिक्र। ५—ब्रह्म। ६—मंसूर के ओछेपन का अनुकरण। ७—मिट जाने का चाव। ८—लड़ाकू प्रेम। ९—योग्य १०—रोगी शरीर। ११—घमण्ड। १२—कृपा करने को मन न करता हो। १३—जमशेद के मधुपात्र की तलछट तक पी जाने वाले १४—अंगूरी शराब

:: ७३ ::

ये हम जो हिज्र में दीवार-ओ-दर को देखते हैं
कभी सबा को कभी नामाबर को देखते हैं।

वो आएँ घर में हमारे ख़ुदा की क़ुदरत है
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं।

नज़र लगे न कहीं उसके दस्त-ओ-बाज़ू को
ये लोग क्यों मेरे ज़ख्मे-जिगर को देखते हैं। *

:: ७४ ::

जो आऊँ सामने उनके तो मरहबा[१] न कहें
जो जाऊँ वाँ से कहीं को तो ख़ैरबाद[२] नहीं।

कभी जो याद भी आता हूँ मैं तो कहते हैं
कि आज बज़्म में कुछ फ़ितना-ओ-फ़साद[३] नहीं।

अलावा ईद के मिलती है और दिन भी शराब
गदाए-कूचए-मैख़ाना नामुराद नहीं।

जहाँ में हो ग़म-ओ-शादी बहम[४] हमें क्या काम
दिया है हमको ख़ुदा ने वो दिल कि शाद नहीं।

तुम उनके वादे का ज़िक्र उनसे क्यों करो 'ग़ालिब'
ये क्या कि तुम कहो और वे कहें कि याद नहीं।

---

* अपने जिगर के घाव देखने वालों को देख कर प्रेमी के मन में यह आशंका उठ रही है कि कहीं इनकी नजर प्रिय के हाथ और बाहों को न लग जाय, क्योंकि जिगर में उसने ही घाव किया है।

१—स्वागत के लिये प्रेम सूचक शब्द। २—विदा के समय कहा जाने वाला शब्द। ३—लड़ाई झगड़ा। ४—दुख सुख साथ साथ

:: ७५ ::

तेरे तोसन[1] को सबा[2] बाँधते हैं
हम भी मज़मूं की हवा[3] बाँधते हैं।

आह का किसने असर देखा है
हम भी एक अपनी हवा बाँधते हैं।

तेरी फुरसत के मुक़ाबिल ए उम्र
बर्क़ को पा-ब-हिना बाँधते हैं।*

ग़लती हाय मज़ामी मत पूछ
लोग नाले को रसा बाँधते हैं।+

१—घोड़ा। २—हवा। ३—रोब जमाना। हवा बाँधना मुहाविरा है जिसका अर्थ है शेख़ी मारना, रोब जमाना। इस शेर मे व्यंग भी है और अतिशयोक्ति भी। कहते हैं कि अपने घोड़े को हम हवा की तरह तीव्रगामी मानते है, इसलिये उसे सबा (हवा) कह रहे है। यद्यपि वह हवा से भी तेज चलता है। हवा कह कर तो हमने मज़मून की हवा बाँधी है।

* जिन्दगी को दो दिन, चार दिन की जिन्दगी कह कर उसकी निस्सारता की ओर संकेत किया जाता है। ग़ालिब ने जीवन को इतना अल्प बताया है कि बिजली की चाल को भी कहते है कि उसके पाँव में मानो मेहदी लगी हो। अर्थात् मनुष्य की आयु उससे भी कम है जितनी बिजली की चाल।

+ मज़ामीन अर्थात् मज़मूनों की गलतियाँ न पूछो। लोग नाले (रुदन) को रसा अर्थात् पहुँचा हुआ कह देते हैं। यदि रुदन की पहुँच होती तो हमारे रुदन में भी कुछ असर होता

सादा पुरकार है ख़ूबाँ 'ग़ालिब'
हमने पैमाने-वफ़ा बाँधते हैं।*

:: ७६ ::

दायम[1] पड़ा हुआ तेरे दर नहीं हूँ मैं
ख़ाक ऐसी ज़िन्दगी पै कि पत्थर नहीं हूँ मैं।

क्यों गर्दिशे मदाम[2] से घबरा न जाय दिल
इन्सान हूँ पियाला-ओ-साग़र नहीं हूँ मैं।

यारब ज़माना मुझको मिटाता है किसलिये
लौहे-जहाँ पै[3] हर्फ़े मुकर्रर नहीं हूँ मैं।

*सादा अर्थात् सरल हृदय या अनुभवहीन। पुरकारा अर्थात् चालाक, ऐयार। इस शेर का स्वर भी व्यंगात्मक है। कहते हैं कि ये हसीन हमसे कहते हैं कि वफ़ा करेंगे, मानो हम जानते ही नहीं कि ये कैसे छली होते हैं।

१—सदा, हमेशा। कहते हैं कि मैं यदि पत्थर होता और तेरे दर (द्वार) पर होता तो दिन में बीसो बार तेरे चरण ही चूमने को मिलते। परन्तु धिक्कार है इस जीवन पर कि मैं पत्थर भी नहीं बना। इसका एक मतलब यह भी है कि तुझसे दूर रहना मानों बिल्कुल निर्जीव और निश्चेष्ट जीवन बिताना है। यद्यपि मैं पत्थर नहीं हूँ फिर भी उसके द्वार तक नहीं पहुँच सकता। धिक्कार है ऐसे जीवन पर!

२—लगातार चक्करों। शराब के प्याले और साग़र का तो काम ही है चक्कर में रहना। पर मैं तो इन्सान हूँ, इसलिये इस हमेशा के चक्कर से मेरा मन क्यों न घबरा जाय।

३—लौह अरबी में उस तख़्ती को या पत्थर को कहते हैं जिस पर कुछ लिखा जाय। ग़ालिब कहते हैं कि मैं दुनिया की तख़्ती पर दोहरा कर लिखा हुआ अक्षर (हर्फ़-मुकर्रर) नहीं हूँ फिर ज़माना मुझे क्यों मिटाता है। (तख़्ती पर कोई अक्षर दो बार लिखा जाय तो दूसरे अक्षर को मिटा देते हैं।)

:: ७७ ::

सब कहाँ, कुछ लाला-ओ-गुल में नुमायाँ हो गई
खाक मे क्या सूरतें होंगी कि पिनहाँ हो गई ।[1]

याद थी हमको भी रङ्गारङ्ग बज़्म आराइयाँ
लेकिन अब नक्श-ओ-निगारे ताके निसियाँ हो गई ।[2]

जूए-खू आँखों से बहने दो कि है शामे-फिराक़
मै ये समझूँगा कि दो शमएँ फरोज़ाँ हो गई ।[3]

इन परीज़ादों से लेंगे खुल्द मे हम इन्तक़ाम
क़ुदरते-हक़ से यह हूरें अगर वाँ हो गई ।[4]

नींद उसकी है, दिमाग़ उसका है, रातें उसकी है
तेरी जुल्फें जिसके बाज़ू पर परेशाँ हो गई ।

१—सब कहाँ अर्थात् सब नहीं कुछ थोड़ी ही सी शक्लें फूलों के रूप मे प्रकट हो गई, इस से अनुमान कीजिये कि कैसे-कैसे रूपवान इस मिट्टी में छिप गये होंगे जिनकी सुन्दरता के प्रतीक ये फूल हैं।

२—हमको भी राग रंग की महफिलों की कहानियाँ याद थीं अर्थात् हम भी आनन्द और सुख भोग चुके है। परन्तु अब वे ताक़े-निसियाँ (जिस ताक पर कुछ रख कर भूल जाया जाय) की शोभा बन चुकी हैं। यानी अब हम सब कुछ भूल चुके है।

३—जूए-खू अर्थात् खून की नदी को आँखों से बहने दो। मै समझूँगा कि जुदाइ की शाम मे दीप जल गये हैं जिनसे जुदाई की शाम की अंधियारी दूर हो जायगी।

४—परीजादों अर्थात् परियों की लड़किया (सुन्दरियाँ) यदि स्वर्ग मे हूरें बन गई तो इन्होंने हमे जितना दुनिया में सताया है इस सब का बदला ले लेंगे। क्योंकि हूरो के बारे मे माना जाता है कि वे स्वर्गवासियों को दासी के रूप में मिलेंगी।

मैं चमन में क्या गया गोया दबिस्ताँ[1] खुल गया
बुलबुलें सुनकर मेरे नाले ग़जल ख्वाँ हो गईं।

रंज से ख़ूगर[2] हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज
मुश्किलें इतनी पड़ी मुझ पर कि आसाँ हो गईं।

यूँ ही गर रोता रहा 'ग़ालिब' तो ए अहले-जहाँ
देखना इन बस्तियों को तुम कि वीराँ हो गईं।

:: ७८ ::

दीवानगी से दोश पै ज़ुन्नार भी नहीं
यानी हमारी जेब में एक तार भी नहीं।[3]

दिल को नियाज़े-हसरते-दीदार कर चुके
देखा तो हम में ताक़ते दीदार भी नहीं।[4]

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ तो सह्ल है
दुशवार तो यही है कि दुशवार भी नहीं।

१—पाठशाला। कहते हैं कि मैं चमन में प्रिय के लिए क्या रोया कि बुलबुलें भी गज़ल ख्वानी (गजल पढ़ने) करने लगी अर्थात् अपने गीत भूल कर मेरी तरह प्रिय की याद के गीत गाने लगीं। २—आदी, अभ्यस्त। ३—प्रेम में पागल बनकर हमने अपनी जेब (गरेबान या कुरते का गला) के इतने पुर्जे उड़ा दिये कि अब एक तार या धागा भी नहीं रह गया जिसे जनेऊ कह सकते। ४—दीदार की हसरत के पीछे रो-रोकर और घुल-घुल कर हमने दिल को ख़त्म कर दिया। परन्तु अब पता चला कि जिस दर्शन के लिये हमने यह सब कुछ किया अब हममें उसकी ताक़त ही नहीं रह गई। अर्थात् सारी मेहनत व्यर्थ गई

बे इश्क़ उम्र कट नहीं सकती है और याँ
ताक़त ब-क़द्रे-लज्ज़ते-आज़ार भी नहीं।[1]

शोरीदगी के हाथ से सर है वबाले-दोश
सहरा में ए ख़ुदा कोई दीवार भी नहीं।[2]

गुन्जाइशे-अदावते-अग़ियार एक तरफ़
याँ दिल में जोफ़ से हविसे-यार भी नहीं।[3]

डर नालाहाय ज़ार से मेरे, ख़ुदा को मान
आख़िर नवाए-मुर्गे-गिरफ्तार भी नहीं।[4]

इस सादगी पे कौन न मर जाय ए ख़ुदा
लड़ते है और हाथ में तलवार भी नहीं।

देखा 'असद' को ख़िलवत-ओ-जलवत[5] में बाहरा
दीवाना गर नहीं है तो हुशियार भी नहीं।

१—बिना इश्क किये भी जीवन कटना कठिन है क्योंकि बिना प्रेम के जीवन बिल्कुल नीरस होता है। परन्तु यहाँ इतनी शक्ति भी नहीं है कि प्रेम में होने वाले कष्टों को सह सकें। २—प्रेम के पागलपन से अपना सर भी कन्धे पर भार लग रहा है। पर इसे कैसे अलग करूँ। सहरा मे कोई दीवार भी नहो है कि फोड़ ही डालूँ। ३—जोफ़ = कमज़ोरी, निर्बलता। गैरो (अगियार) से वैर की गुंजायस तो एक तरफ रही, यहाँ मन में निबलता के कारण प्रिय की हवस भी नहीं रही ४—मेरे रुदन से डर और ख़ुदा को मान, क्योंकि मेरे रुदन में कम प्रभाव सही पर वह ऐसा भी नहीं जैसे पिंजड़े मे बन्द पक्षी का होता है। ५—खिलवत = एकांत, जलवत = सब के सामने।

:: ७९ ::

हो गई है ग़ैर की शीरीं बयानी[1] कारगर[2]
इश्क़ का उसको गुमां हम बेज़ुबानों पर नहीं।

:: ८० ::

क़यामत है, कि सुन लैला का दस्ते-क़ैस[3] में आना
ताज्जुब से वो बोला, यूँ भी होता है ज़माने में।

दिले-नाज़ुक प उसके रहम आता है मुझे 'ग़ालिब'
न कर सरगर्म उस काफ़िर को उल्फ़त आजमाने में।

:: ८१ ::

दिल लगाकर लग गया उनको भी तन्हा बैठना
बारे, अपनी बेकसी की हमने पाई दाद, यां।

हैं ज़वाल आमादा[4] अजज़ा[5] आफरीनिश[6] के तमाम
मेह्‌रे-गरदूं[7] है चराग़े-रह गुज़ारे-बाद,[8] यां।

:: ८२ ::

ज़माना सख़्त कम आजार[9] है बजाने-'असद'[10]
वगरना हम तो तवक़्क़ो ज़ियादा रखते हैं।

१—मधुर वाणी। २—सफल। ३—मजनूं के प्रवास का जंगल। ४—पतनोन्मुख। ५—पंचभूत। ६—सृष्टि। ७—आकाश का सूरज। ८—पवन-पथ का दीपक। ९—कम दुख देने वाला।
१० की आन की कसम

:: ८३ ::

हसद[1] से दिल अगर अफ़सुर्दा है, गर्मे-तमाशा[2] हो
कि चश्मे-तंग,[3] शायद, कसरते-नज्ज़ारा[4] से वा हो।
बक़दरे-हसरते-दिल[5] चाहिए ज़ौक़े-मआसी[6] भी
भरू यक गोश-ए-दामन[7] गर आबे-हफ़्त दरिया[8] हो
अगर वो सर्वक़द[9] गर्मे-खिरामे-नाज़[10] आ जाये
काफ़े-हर खाके-गुलशन[11] शक्ले-क़ुमरी[12] नाला फ़र्सा[13] हो

:: ८४ ::

काबे में जा रहा, तो न दो ताना, क्या कही
भूला हूँ हक़्क़े-सोहबते-अहले-कुनिश्त[14] को।
ताअत[15] में ता, रहे न मै-ओ-अंगबीं[16] की लाग
दोजख में डाल दो, कोई लेकर बिहिश्त को।
हूँ मुनहरिफ़[17] न क्यों, रहो-रस्मे-सवाब[18] से
टेढ़ा लगा है क़त, क़लमे-सर नविश्त[19] को।
आई अगर बला, तो जिगर से टली नहीं
ईरा[20] ही दे के हमने, बचाया है किश्त को।
'ग़ालिब'; कुछ अपनी सई[21] से लहना[22] नही मुझे
खिरमन[23] जले अगर न मलख़[24] खाये किश्त[25] को।

१—द्वेष। २—तमाशे मे लीन। ३—संकीर्ण दृष्टि। ४—दृश्य की बहुलता। ५—मन की अपूर्ण कामना के बराबर। ६—पाप के प्रति रुचि। ७—दामना क एक कोना। ८—सात समुन्दर क पानी। ९—सर्व नामक पेड़ जैसा ऊँचा। १०—मंद-मंथर गतिशील ११—बाग की एक-एक मुट्ठी मिट्टी। १२—फ़ाख्ता की शक्ल का १३—आर्तनाद करके रोना। १४—अग्निशाला वाले। १५—पूजा १६—शराब और शहद। १७—न मानने वाला, विद्रोही १८—धार्मिक रीति रिवाज। १९—भाग्य-लेखनी २०—शतरंज के खेल मे फँसा मोहरा। २१—प्रयत्न। २२—भाग्य में। २३—खलिहान २४ टिड्डी २५—खेती

:: ८५ ::

मजे जहान के अपनी नज़र में खाक नहीं
सिवाय-ख़ूने-जिगर, सो जिगर में ख़ाक नहीं।[१]

मगर ग़ुबार हुए पर हवा उड़ा ले जाय
वगर न ताव-ओ-तवाँ वाल-ओ-पर में ख़ाक नहीं।[२]

भला उसे न सही कुछ मुझी को रह्म आता
असर मेरे नफसे-बेअसर[३] में ख़ाक नहीं।

ख़याले-जलवए-गुल मे खराब है मैकश[४]
शराबखाने के दीवार-ओ-दर में ख़ाक नहीं।

हुआ हूँ इश्क़ ग़ारतगरी से शर्मिन्दा
सिवाय हसरते-तामीर घर में ख़ाक नहीं।[५]

१—पहली पंक्ति का अर्थ स्पष्ट है। दूसरी पंक्ति की व्याख्या यों होगी कि जिगर का खून पी पी कर समय कटता था अब वह भी नहीं रहा, अब कोई चीज ऐसी नहीं रही जो नीरस जीवन को सरस बना सके। २—पहली पंक्ति में 'मगर' शब्द 'शायद' के अर्थ में आया है। कहते हैं शायद मिटकर मिट्टी हो जाने पर हवा मेरी धूल को उडा ले जाय, नहीं तो मेरे परों में वह शक्ति नहीं रही कि उड़कर गंतव्य स्थान को पहुँच सकूँ। ३—नफस =साँस, बेअसर =प्रभाव हीन। कहते हैं कि मेरी प्रभावहीन आह यदि उसे दया और रहम पर न उकसा सकी तो मुझे ही अपने पर तरस आया होता कि मैं यों प्रेम में अपने को बरबाद न करता। ४—पीने वाले, शराबी। ५—इश्क ने घर को बिलकुल बरबाद कर दिया है। अब तो सिवाय गृह निर्माण की अभिलाषा के और घर में कुछ रहा ही नहीं जो इश्क को बरबादी के लिये भेंट करूँ। अपनी इस दरिद्रता के लिये शर्मिन्दा होना पड़ रहा है

:: ८६ ::

दिल ही तो है न संग-ओ-खिश्त[1] दर्द से भर न आय क्यों
रोएँगे हम हज़ार बार कोई हमें सताये क्यों ?
दैर[2] नहीं, हरम[3] नहीं, दर[4] नहीं, आस्ताँ[5] नही
बैठे है रहगुज़र[6] पै हम, ग़ैर हमें उठाय क्यों ?
दशनए-मजा जां सतां,[7] नावके-नाज़ बे पनाह[8]
तेरा ही अक्से-रुख सही सामने तेरे आय क्यों ?
क़ैदे-हयात-ओ-बन्दे-ग़म[9] अस्ल में दोनों एक हे
मौत से पहले आदमी ग़म से निजात पाय क्यों ?
हुस्न और उस पै हुस्ने-जन,[10] रह गई बुलहवस[11] की शर्म
अपने पै एतमाद[12] है, और को आज़माय क्या ?

१—संग=पत्थर, खिश्त=ईंट। २—मन्दिर। ३—मस-जिद। ४—द्वार। ५—चौखट। ६—सड़क। ७—दशना=छुरी, गमजा=आँख का इशारा ८—नाज का तीर। तेरी आँख का इशारा प्राणघातक कटार है और तेरे नाज ओ—अदा का तीर ऐसा है जिससे कोई बच नहीं सकता इसलिए तू दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब न देख। क्योंकि यद्यपि वह तेरे ही रूप का प्रतिबिम्ब होगा किन्तु उसके पास भी यही अस्त्र होंगे इस लिये तुझको ही तेरे रूप से कही कोई हानि न पहुँच जाय। ९—दुख के बन्धन। क़ैदे-हयात अर्थात जीवन का बन्धन तथा दुख के बन्धन दोनों ही जब एक हैं तो मृत्यु से पहले मनुष्य दुख से कैसे मुक्ति पा सकता है। १०—अच्छे भाव। ११—विलासी। १२—विश्वास। प्रिया को एक तो अपने सौन्दर्य पर विश्वास है दूसरे मेरे प्रतिद्वन्दी के प्रति वह अच्छे भाव रखता है और समझता है कि वह उसका सच्चा प्रेमी है इसलिये वह दूसरो के प्रेम की परीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं समझता। यही कारण है कि उस विलासी की आबरू रह गई और उसे प्रेम की परीक्षा नही देनी पड़ी अपने पै एतमाद है अर्थात अपने सौन्दय पर भरोसा है

वाँ वो ग़ुरुरे-इज़्ज़-ओ-नाज़[1] याँ ये हिजाबे-पासे-वज़अ[2]
राह में हम मिले कहाँ बज़्म में वो बुलाय क्यों ?
हाँ वो नहीं ख़ुदा परस्त, जाओ वो बेवफ़ा सही
जिसको हो दीन-ओ-दिल अज़ीज़, [3]उसकी गली में जाँय क्यों ?
'ग़ालिबे' ख़स्ता के बग़ैर कौन से काम बन्द है
रोइये ज़ार ज़ार क्या, कीजिये हाय हाय क्यों !

:: ८७ ::

ग़ुञ्चए-नाशगुफ़्ता[4] को दूर से मत दिखा कि यूँ
बोसे[5] को पूछता हूँ मैं, मुँह से मुझे बता कि यूँ ।
पुरसिजे-तर्ज़े दिलबरी[6] कीजिये क्या कि बिन कहे
उसके हरेक इशारे से निकले है यह अदा कि यूँ ।
रात के वक़्त मय पिये, साथ रक़ीब को लिये
आए वो याँ ख़ुदा करे, पर न ख़ुदा करे कि यूँ ![7]

१—मान और रूप का घमण्ड । २—स्वाभिमान की आदत की शर्म । अर्थात वह अपने घमण्ड में है और यहाँ अपने स्वाभिमानी स्वभाव का लिहाज है । फिर राह में हम कैसे मिलें और वह अपनी सभा में कैसे बुलायें । ३—जिनको धर्म और दिल प्यारे हों । ४—अधखिली कली । ५—चुम्बन । बड़ा शोख़ शेर है । प्रिय से कहते हैं कि मैंने पूछा कि चुम्बन कैसे लिया जाता है तो तूने अध-खिली कली को होंठों से लगा कर दिखा दिया । मैं चाहता हूँ कि तू मेरा चुम्बन लेकर बता कि ऐसे प्यार करते हैं । ६—दिल छीनने का ढंग क्या पूछिये, क्योंकि वह कुछ नहीं कहता फिर भी उसके प्रत्येक भाव से यह प्रकट होता है कि यों दिल छीनते हैं । ७—सीधा सा शेर है । अर्थात् यह तो चाहते हैं कि प्रिय यहाँ आए पर यह नहीं चाहते कि वह शराब पिये हो और रक़ीब को साथ में लिए हो । इस रूप में उसका आना तो आनन्द नहीं कष्ट का कारण होगा ।

ग़ैर से रात क्या बनी, यह जो कहा तो देखिये
सामने आन बैठना और ये देखना कि यूँ।[१]

बज़्म में उसके रू-ब-रू क्यों न ख़ामोश बैठिये
उसकी तो ख़ामुशी में भी है यही मुद्दआ कि यूँ।[२]

मैंने कहा कि बज़्मे नाज़ चाहिये ग़ैर से तही[३]
सुन के सितम ज़रीफ़ ने मुझको उठा दिया कि यूँ।

मुझसे कहा जो यार ने जाते है होश किस तरह
देख के मेरी बेख़ुदी चलने लगी हवा कि यूँ।[४]

जो ये कहे कि रेख़्ता क्योंकि हो रश्के फ़ारसी
गुफ्तए-'ग़ालिब' एक बार पढ़ के उसे सुना कि यूँ।[५]

१—पूछा था कि रात दूसरे के साथ कैसी कटी तो सामने बैठ गये और तेज़ निगाहों से देखने लगे, मतलब यह कि दूर ही बैठा रहा। २—प्रिय स्वयं चुप रहता है इसलिये समझ लेना चाहिये कि वह दूसरों को भी इसी प्रकार चुप देखना चाहता है। ३—तही = खाली। मेरे यह कहने पर कि तुम्हारी महफ़िल में कोई गैर न रहना चाहिये, उसने मुझे ही हाथ पकड़ कर उठा दिया। ४—इस शेर में होश उड़ने के बारे में पूछा गया है इसलिये हवा के चलने का ज़िक्र किया गया है। ५—रेख़्ता = गजल। 'गालिब' के समय में फारसी का बोलबाला था और उसके मुक़ाबले में उर्दू को तुच्छ समझा जाता था। 'ग़ालिब' इस मकता में फारसी की बड़ाई करने वालों को सम्बोधित कर कहते है कि जो लोग उर्दू ग़ज़ल की बड़ाई (रश्के-फ़ारसी = फारसी को जिससे ईर्ष्या हो) मे सन्देह करें उनको मेरी उर्दू ग़ज़ल सुना कर कहो कि इस प्रकार की ऊंची गजल भी उर्दू में कही जाती है

:: ८८ ::

धोता हूँ जब मैं पीने को, उस सीमतन[1] के पाँव
रखता है, ज़िद से, खेंच के बाहर लगन[2] के पाँव।

दी सादगी से जान, पड़ूँ कोहकन[3] के पाँव
हैहात,[4] क्यों न टूट गए, पीरज़न[5] के पाँव।

भागे थे हम बहोत, सो उसी की सज़ा है यह
होकर असीर[6] दाबते हैं राहज़न के पाँव।

मरहम की जुस्तुजू में, फिरा-हूँ जो दूर-दूर
तन के सिवा फ़िगार[7] है, उस ख़स्ता तन के पाँव।

अल्ला रे ज़ौक़े-दश्त नवर्दी[8] कि बादे-मर्ग[9]
हिलते हैं ख़ुद-बख़ुद मिरे, अन्दर कफ़न के पाँव।

है जोशे-गुल बहार में यां तक; कि हर तरफ़
उड़ते हुए उलझते हैं, मुर्गे-चमन[10] के पाँव।

शब[11] को किसी के ख़्वाब में आया नहीं कहीं
दुखते हैं आज उस बुते-नाज़ुक बदन[12] के पाँव।

'ग़ालिब', मिरे कलाम में क्योंकर मज़ा न हो
पीता हूँ धो के ख़ुसरू-ए-शीरीं सुख़न[13] के पाँव।

१—चाँदी जैसे शरीराला। २—पानी का बर्तन। ३—पहाड़ काटने वाला, फरहाद। ४—हाय, अफसोस। ५—बूढ़ी स्त्री जिसने फरहाद को शीरीं की मृत्यु का झूठा समाचार सुनाया था, जिसे सुन कर फरहाद अपना सिर फोड़ कर मर गया था। ६—कैदी। ७—जख्मी। ८—जंगल-जंगल घूमने का शौक। ९—मौत के बाद। १०—बाग का पक्षी। ११—रात। १२—कोमलांगी। रूपसी। १३ बादशाह सकेत 'ज़फ़र की ओर है)

:: ८९ ::

वां उनको हौले-दिल[1] है, तो यां मैं हूँ शर्मसार
यानी यह मेरी आह की तासीर[2] से न हो।

अपने को देखता नहीं, ज़ौक़े-सितम[3] तो देख
आईना ताकि दीद-ए-नख़चीर[4] से न हो।

:: ९० ::

लखनऊ आने का बाइस नहीं खुलता, यानी
हवसे-सैरो-तमाशा सो, वो कम है हमको।

मक़्त-ए-सिलसिल-ए-शौक़[5] नहीं है यह शहर
अज़्मे-सैरे-नजफ़ो[6]-तौफ़े-हरम[7] है हमको।

लिए जाती है कहीं एक तवक़्क़ो,[8] 'ग़ालिब'
जाद-ए-रह[9] कशिशे-काफ़े-करम[10] है हमको।

१—दिल की घबराहट। २—प्रभाव। ३—अत्याचार करने की रुचि। ४—शिकार की आँख। ५—अभिरुचि के क्रम का अंत। ६—तीर्थ-यात्रा का निश्चय। ७—हज़रत अली के मज़ार के दर्शन का विचार। ८—आशा। ९—रास्ते का निशान। १०—करम शब्द के प्रथम अक्षर (काफ़) की आरम्भ रेखा।

:: ६१ ::

वारस्ता[1] इससे हैं कि मुहब्बत ही क्यों न हो
कीजे हमारे साथ अदावत ही क्यों न हो।
छोड़ा न मुझ में ज़ोफ़[2] ने रङ्ग इख़्तलात[3] का
है दिल पै बार नक्शे-मुहब्बत ही क्यों न हो।
है मुझको तुझसे तज़किरए-ग़ैर का गिला
हर चन्द बरसबीले-शिकायत[4] ही क्यों न हो।
पैदा हुई है, कहते है, हर दर्द की दवा
यूं हों तो चारए ग़मे उलफ़त[5] ही क्यों न हो।
है आदमी बजाय ख़ुद एक महशरे ख़याल[6]
हम अंजुमन समझते हैं ख़िलवत ही क्यों न हो।
वारस्तगी वहानए-बेगानगी[7] नहीं
अपने से कर, न ग़ैर से वहशत ही क्यों न हो।
उस फ़ितना ख़ू के दर से अब उठते नहीं 'असद'
इसमें हमारे सर पै क़यामत ही क्यों न हो।

१—आज़ाद। हम यह नहीं कहते कि हमसे प्रेम ही करो, अदावत (वैर) भी रख सकते हो, परन्तु इतना अवश्य हम चाहते हैं कि वह हमसे ही हो, अर्थात् किसी भी दूसरे को इसमें शरीक न करो। २—दुर्बलता। ३—जोश के साथ प्रिय से मिलन। ४—शिकायत के सिलसिले में। ५—प्रेम पीड़ा का इलाज। ६—महशर=कयामत, खयाल=विचार। कहते हैं आदमी स्वयं विचारों का एक प्रलय है। क़यामत में मुर्दे भी जी उठेंगे, इसी प्रकार मनुष्य के मन मे भी मरे हुए, भूले हुए विचार जाग उठते हैं और वह कभी विचारों से ख़ाली नहीं होता इसलिये वह लाख कहे कि हमारे मन में कुछ नहीं है, हम उसे ख़लवत (एकान्त) न कहेंगे, महफ़िल ही कहेंगे। ७—वेगाना बनने का बहाना। आज़ादी या बन्धनों से मुक्त हो जाने के ये मानी नहीं कि इसे दूसरों से बेगानगी बरतने का बहाना बना लो। ऐसा करना यह प्रकट करता है कि तुम अपनी स्वच्छता पर घमंड करते हो यदि दूसरों को छोड़ना है तो अपने को छोड़ो, अपनी इच्छाओं और वासनाओं को छोड़ो।

:: ९२ ::

तुम जानो तुमको ग़ैर से जो रस्म-ओ राह-हो
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो।

बचते नहीं मुआखिज़ए-रोज़े हश्र[1] से
क़ातिल अगर रक़ीब है तो तुम गवाह हो।

क्या वह भी बे गुनह कुश ओ-हक़-नाश नास[2] है
माना कि तुम बशर नहीं खुरशीद ओ-माह हो।

जब मैकदा छुटा तो फिर अब क्या जगह की कैद
मसजिद हो, मदरसा हो, कोई खान क़ाह हो।

सुनते हैं जो बहिश्त की तारीफ़ सब दुरुस्त
लेकिन खुदा करे वो तेरी जलवा गाह[3] हो।

'ग़ालिब' भी गर न हो तो कुछ ऐसा ज़रर[4] नहीं
दुनिया हो यारब और मेरा बादशाह हो।

१—कयामत के दिन ईश्वर की ओर से पूछ ताछ। कहते है कि हश्र के दिन तुमको भी ईश्वर के सामने जरूर जाना होगा क्योंकि यद्यपि तुमने मुझे नही मारा पर तुम्हारे सामने मैं मारा गया हूँ। २—बेगुनह कुश = बेगुनाहों को मारने वाला। हक़ नाशनास = हक़, अधिकार न पहचानने वाला। कहते हैं कि माना तुम मनुष्य नहीं, सूर्य और चाँद हो, परन्तु वे तो न किसी को क़त्ल करते है न किसी का हक़ मारते है। फिर तुम में ये गुण क्यों हैं। ३—दर्शन स्थान। स्वर्ग की जो कुछ भी तारीफ़ सुनी वह तो मानते ही है कि ठीक होगी। अब केवल एक अभिलाषा और है कि वहाँ तेरे दर्शन भी हो जाएँ अर्थात् वहाँ तू भी हो। ४—हर्ज नहीं। बादशाह से यहाँ बहादुर शाह जफर से है

:: ९३ ::

गई वो बात कि हो गुफ़्तगू तो क्यों कर हो
कहे से कुछ न हुआ फिर कहो तो क्यों कर हो।[1]

हमारे ज़ेह्न में इस फ़िक्र का है नाम विसाल
कि गर न हो तो कहाँ जायँ हो तो क्यों कर हो।[2]

अदब है और यही कशमकश तो क्या कीजे
हया है और यही गोमगो तो क्यों कर हो।[3]

उलझते हो तुम अगर देखते हो आईना
जो तुम से शह्र मे हों एक दो तो क्यों कर हो।

जिसे नसीब हो रोज़े-सियाह[4] मेरा सा
वो शख्स दिन न कहे रात को तो क्यों कर हो।

हमें फिर उनसे उमीद और उन्हें हमारी क़द्र
हमारी बात ही पूछें न वो तो क्योंकर हो।

ग़लत न था हमें ख़त पर गुमाँ तसल्ली का
न माने दीदए-दीदार जू[5] तो क्यों कर हो।

१—कहते है कि वह बात तो गई जब यह सोचते थे कि बात शुरू करें तो कैसे। परन्तु अब तो बात कह भी दी और कोई असर भी न हुआ, अब क्या करें। २—हमारे लिये तो वस्ल (मिलन) इसी चिन्ता का नाम है कि यदि मिलन न हुआ तो कहाँ जाएँ और यदि मिलन हो तो कैसे। ३—अर्थात् बात कैसे बने, क्योंकि हम तुम्हारे अदब (आदर) के कारण कुछ कहते नहीं और तुम शर्म के कारण बात नहीं करते ४—काला दिन कष्टों से भरा जीवन ५—दर्शनों की प्यासी आँख

:: ६४ ::

किसी को देके दिल कोई नवा सजें-फ़ुग़ाँ क्यों हो
न हो जब दिल ही सीने में तो फिर मुँह मे ज़बाँ क्यों हो।[1]

वो अपनी खू[2] न छोड़ेंगे हम अपनी वज़्अ[3] क्यों बदलें
सुबुक सर[4] बन के क्या पूछें कि हमसे सरगराँ[5] क्यों हो।

किया ग़मख्वार ने रुसवा लगे आग इस मुहब्बत को
न लाए ताब जो ग़मकी वो मेरा राजदाँ क्यों हो।[6]

वफ़ा कैसी, कहाँ का इश्क़, जब सर फोड़ना ठहरा
तो फिर ए संग-दिल तेरा ही संगे-आस्ताँ[7] क्यों हो?

१—कहते हैं कि जब किसी को दिल दे दिया जाय तब रोने धोने और फ़रियाद करने का क्या काम और जब दिल सीने में न हो तब मुँह मे ज़बान भी न रखनी चाहिये। २—आदत। ३—आदत। ४—हलका सर। ५—भारी सर। इस शेर में सुबुक सर का अर्थ होगा गिर जाना और सरगराँ का अर्थ है नाराज़। कहते हैं कि वह अपनी आदत न छोड़ेंगे तो हम क्यों अपनी आदत छोड़ें। हम क्यों गिरकर पूछें कि तुम हमसे क्यों खफा हो? ६—कहते हैं कि मेरे दुखो की ताब न लाकर मेरे गमख्वार (साथी, दोस्त) ने ही फरियाद शुरू कर दी और इस प्रकार मेरे प्रेम का भेद सब पर प्रकट हो गया। ऐसी मुहब्बत को आग लगे जो कोई मेरे दुखों को देखकर स्वयं सहन नहीं कर सकता वह मेरा राजदाँ (भेदी) क्यों बनता है। ७—द्वार का पत्थर। कहते हैं कि जब सिर फोड़ना ही प्रेम का परिणाम है तो फिर कहाँ की वफा और कैसा इश्क़ और फिर यह भी क्या जरूरी है कि वह पत्थर जिससे सिर फोड़ना है वह तेरे ही द्वार का हो।

:: ६४ ::

किसी को देके दिल कोई नवा सजे-फ़ुग़ा क्यों हो
न हो जब दिल ही सीने में तो फिर मुँह में ज़बाँ क्यों हो।[१]

वो अपनी ख़ू[२] न छोड़ेंगे हम अपनी वज्अ[३] क्यों बदलें
सुबुक सर[४] बन के क्या पूछें कि हमसे सरगराँ[५] क्यों हो।

किया ग़मख़्वार ने रुसवा लगे आग इस मुहब्बत को
न लाए ताब जो ग़मकी वो मेरा राजदाँ क्यों हो।[६]

वफ़ा कैसी, कहाँ का इश्क़, जब सर फोड़ना ठहरा
तो फिर ए संग-दिल तेरा ही संगे-आस्ताँ[७] क्यों हो ?

१—कहते हैं कि जब किसी को दिल दे दिया जाय तब रोने धोने और फ़रियाद करने का क्या काम और जब दिल सीने में न हो तब मुँह मे ज़बान भी न रखनी चाहिये। २—आदत। ३—आदत। ४—हलका सर। ५—भारी सर। इस शेर में सुबुक सर का अर्थ होगा गिर जाना और सरगराँ का अर्थ है नाराज। कहते हैं कि वह अपनी आदत न छोड़ेंगे तो हम क्यों अपनी आदत छोड़ें। हम क्यों गिरकर पूछें कि तुम हमसे क्यों खफ़ा हो? ६—कहते हैं कि मेरे दुखों की ताब न लाकर मेरे ग़मख़्वार (साथी, दोस्त) ने ही फरियाद शुरू कर दी और इस प्रकार मेरे प्रेम का भेद सब पर प्रकट हो गया। ऐसी मुहब्बत को आग लगे जो कोई मेरे दुखों को देखकर स्वयं सहन नहीं कर सकता वह मेरा राजदाँ (भेदी) क्यों बनता है। ७—द्वार का पत्थर। कहते हैं कि जब सिर फोड़ना ही प्रेम का परिणाम है तो फिर कहाँ की वफ़ा और कैसा इश्क़ और फिर यह भी क्या जरूरी है कि वह पत्थर जिससे सिर फोड़ना है वह तेरे ही द्वार का हो।

कफस मे मुझसे रूदादे-चमन[1] कहते न डर हमदम
गिरी थी जिस पै कल बिजली वो मेरा आशियां क्यों हो।

ये कह सकते हो हम दिल में नहीं हैं पर ये बतलाओ
कि जब दिल में तुम्हीं तुम हो तो आँखों से निहाँ[2] क्यों हो।

गलत है जज़्बे-दिल का शिकवा देखो जुर्म किसका है
न खींचो गर तुम अपने को कशाकश दरमियाँ क्यों हो ?[3]

ये फ़ितना आदमी की खाना-वीरानी को क्या कम है
हुए तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आस्माँ क्यों हो।[4]

यही है आज़माना तो सताना किसको कहते है
अदू[5] के हो लिये जब तुम मेरा इम्तहाँ क्यों हो।

१—चमन का हाल। ग़जब का शेर है। पिंजड़े में बन्द पक्षी दूसरे स्वतन्त्र पक्षी से चमन का हाल पूछता है। वह पेक्षी जानता है कि बन्दी पक्षी का नीड़ भी कल बिजली गिरने से जल गया है। वह तनिक संकोच करता है बताते हुए। इस पर बन्दी पक्षी उसे ढाढ़स देते हुए कहता है कि तुम मुझसे चमन का हाल कहो तो। यह जरूरी नहीं है कि कल जिस पर बिजली गिरी थी वह मेरा ही घोंसला हो। २—निहित ३—कहते है कि मेरे हृदय के आकर्षण की शिकायत करना और यह कहना कि उसने हमें कशमकश मे डाल रक्खा है, गलत है। तुम स्वयं खिचते हो यदि तुम न खिचो और मेरे हृदय की आकर्षण-शक्ति के कारण मेरे पास चले आओ तो यह खींचातानी क्यों हो। ४—फितना का शाब्दिक अर्थ है झगड़ा परन्तु यहाँ ग़ालिब प्रिय के मनोहर रूप और बूटे से क़द को फ़ितनी कह कर कहते हैं कि मनुष्य को तबाह व बरबाद करने के लिए यही क्या कम है। और क्योंकि तुम्हारी दोस्ती भी तुम्हारे प्रेमी के लिए बरबादी का कारण है अतः उसके साथ आसमान को दुश्मनी करने की जरूरत ही नहीं। वह तो यो भी बरबाद हो जायगा। ५—दुश्मन।

:: ६४ ::

किसी को देके दिल कोई नवा सजे-फ़ुगा क्यों हो
न हो जब दिल ही सीने में तो फिर मुँह में ज़बाँ क्यों हो।[१]

वो अपनी ख़ू[२] न छोड़ेंगे हम अपनी वज़अ[३] क्यों बदलें
सुबुक सर[४] बन के क्या पूछें कि हमसे सरगराँ[५] क्यों हो।

किया ग़मख़्वार ने रुसवा लगे आग इस मुहब्बत को
न लाए ताब जो ग़मकी वो मेरा राज़दाँ क्यों हो।[६]

वफ़ा कैसी, कहाँ का इश्क़, जब सर फोड़ना ठहरा
तो फिर ए संग-दिल तेरा ही संगे-आस्ताँ[७] क्यों हो?

१—कहते हैं कि जब किसी को दिल दे दिया जाय तब रोने धोने और फ़रियाद करने का क्या काम और जब दिल सीने में न हो तब मुँह में जबान भी न रखनी चाहिये। २—आदत। ३—आदत। ४—हलका सर। ५—भारी सर। इस शेर में सुबुक सर का अर्थ होगा गिर जाना और सरगराँ का अर्थ है नाराज। कहते हैं कि वह अपनी आदत न छोड़ेंगे तो हम क्यों अपनी आदत छोड़ें। हम क्यों गिरकर पूछें कि तुम हमसे क्यो खफा हो? ६—कहते है कि मेरे दुखों की ताब न लाकर मेरे ग़मख्वार (साथी, दोस्त) ने ही फ़रियाद शुरू कर दी और इस प्रकार मेरे प्रेम का भेद सब पर प्रकट हो गया। ऐसी मुहब्बत को आग लगे जो कोई मेरे दुखों को देखकर स्वयं सहन नहीं कर सकता वह मेरा राजदाँ (भेदी) क्यों बनता है। ७—द्वार का पत्थर। कहते हैं कि जब सिर फोड़ना ही प्रेम का परिणाम है तो फिर कहाँ की वफ़ा और कैसा इश्क और फिर यह भी क्या ज़रूरी है कि वह पत्थर जिससे सिर फोड़ना है वह तेरे ही द्वार का हो।

क़फ़स में मुझसे रूदादे-चमन[1] कहते न डर हमदम
गिरी थी जिस पै कल बिजली वो मेरा आशियां क्यों हो।

ये कह सकते हो हम दिल में नहीं हैं पर ये बतलाओ
कि जब दिल में तुम्हीं तुम हो तो आँखों से निहाँ[2] क्यों हो।

गलत है जज़्बे-दिल का शिकवा देखो जुर्म किसका है
न खींचो गर तुम अपने को कशाकश दरमियाँ क्यों हो ?[3]

ये फ़ितना आदमी की खाना-वीरानी को क्या कम है
हुए तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आस्माँ क्यों हो।[4]

यही है आज़माना तो सताना किसको कहते है
अदू[5] के हो लिये जब तुम मेरा इम्तहाँ क्यों हो।

१—चमन का हाल। ग़ज़ब का शेर है। पिंजड़े में बन्द पक्षी दूसरे स्वतन्त्र पक्षी से चमन का हाल पूछता है। वह पक्षी जानता है कि बन्दी पक्षी का नीड भी कल बिजली गिरने से जल गया है। वह तनिक संकोच करता है बताते हुए। इस पर बन्दी पक्षी उसे ढाढ़स देते हुए कहता है कि तुम मुझसे चमन का हाल कहो तो। यह जरूरी नहीं है कि कल जिस पर बिजली गिरी थी वह मेरा ही घोंसला हो। २—निहित ३—कहते हैं कि मेरे हृदय के आकर्षण को शिकायत करना और यह कहना कि उसने हमें कशमकश में डाल रक्खा है, ग़लत है। तुम स्वयं खिचते हो यदि तुम न खिचो और मेरे हृदय की आकर्षण-शक्ति के कारण मेरे पास चले आओ तो यह खींचातानी क्यों हो। ४—फ़ितना का शाब्दिक अर्थ है झगड़ा परन्तु यहाँ ग़ालिब प्रिय के मनोहर रूप और बूटे से क़द को फ़ितनी कह कर कहते हैं कि मनुष्य को तबाह व बरबाद करने के लिए यही क्या कम है। और क्योंकि तुम्हारी दोस्ती भी तुम्हारे प्रेमी के लिए बरबादी का कारण है अतः उसके साथ आसमान को दुश्मनी करने की जरूरत ही नहीं। वह तो यों भी बरबाद हो जायगा। ५—दुश्मन।

कहा तुमने कि क्यों हो ग़ैर के मिलने में रुसवाई
बजा कहते हो, सच कहते हो, फिर कहियो कि हाँ क्यों हो।[१]

निकाला चाहता है काम क्या तअनों से तू 'ग़ालिब'
तेरे बेमेह्र कहने से वो तुझ पर मेह्रबाँ हो ?[२]

:: ६५ ::

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो*
हम-सुख़न[३] कोई न हो और हम-ज़बाँ[४] कोई न हो।

बे दर-ओ-दीवार[५] का एक घर बनाया चाहिये
कोई हमसाया[६] न हो और पासबाँ[७] कोई न हो।

१—इस शेर मे कितना तीखा व्यंग है। प्रिय के कहने पर ग़ैर से मिलने में बदनामी क्यों होगी उससे बार-बार कहना कि ठीक कहते हो सच कहते हो और फिर यही वाक्य दोहराने की फ़रमाइश करना कितना मीठा व्यंग है। २—इस क़ते मे भी व्यंग है। अपने से कहते हैं कि तू अपना काम तानों से निकालना चाहता है। तू चाहता है कि तू उसे बेमुरव्वत कहे तो वह तुझ पर मेहरबान हो जायगा। ऐसा न होगा।

*ये केवल तीन शेरों की गजल है। इसे मुसलसल (क्रमबद्ध) गजल भी कह सकते हैं और तीन शेरों का कता भी क्योंकि क़ते में भी एक ही विषय क्रमबद्ध चलता है। इसमें कवि पहली ही पंक्ति में कह देता है कि वह ऐसी जगह जाना चाहता है जहाँ कोई न हो। और अगली पाँचो पंक्तियों में इसी आकांक्षा का विस्तृत रूप से वर्णन करता है।

३—बात करने वाला। ४—वही भाषा बोलने वाला। ५—जिसमे न द्वार हो न दीवार। ६—पड़ोसी। ७—रक्षक।

पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार[1]
और अगर मर जाइये तो नौहा-ख़्वाँ[2] कोई न हो।

:: ९६ ::

है सब्ज़ा जार हर दर-ओ-दीवारे ग़मकदा
जिसकी बहार यह हो फिर उसको ख़िजाँ न पूछ।[3]
न चार बेकसी की भी हसरत उठाइये
दुशावरिये-रह-ओ-सितमे-हम रहाँ न पूछ।[4]

:: ९७ ::

तोड़ बैठे जब कि हम जाम-ओ-सबू[5] फिर हमको क्या
आस्माँ से बादए-गुलफ़ाम[6] गर बरसा करे।

:: ९८ ::

मैं हूँ मुश्ताक़े-जफ़ा[7] मुझ पै जफ़ा और सही
तुम हो बेदाद में ख़ुश इससे सिवा और सही।

१—सेवा सुश्रुषा करने वाला। २—रोने वाला। ३—ग़म-कदा अर्थात् दुख का घर। घर अच्छी तरह वीरान हो जाय और बहुत दिनों तक वीरान रहे, वर्षा के कारण दीवारों पर कोई जम जाय और आँगन में लम्बी-लम्बी घास उग आए तो उसकी हरियाली बाहर का दृश्य उत्पन्न करेगी। कहते है जिस घर की बाहर बरबादी की प्रतीक हो उसकी खिजाँ का हाल क्या पूछते हो। ४—दुशवारिये-रह अर्थात् राह की कठिनाई, सितमे-हमरहाँ अर्थात् हमराहियों के सितम। कहते हैं प्रेम पथ की कठिनाइयों और साथ चलने वालों के अत्याचार का हाल मुझसे न पूछो। मुझसे ये सहन नहीं हो सका इसीलिये लाचार हो मुझे एकांत और बेकसी की शरण लेनी पड़ी। अब मैं उसी की हसरत करूँगा और प्रिय को खोजूँगा। ५—प्याला और सुराही। ६—फूलों की सी सुन्दर शराब। ७—जफ़ा का इच्छुक

ग़ैर की मर्ग[1] का ग़म किस लिये ए ग़ैरते माह[2]
है हवस-पेशा[3] बहुत वह न हुआ, और सही।

तुम हो बुत फिर तुम्हें पिन्दारे-ख़ुदाई[4] क्यों हो
तुम ख़ुदा वन्द[5] ही कहलाओ, ख़ुदा और सही।

कोई दुनिया में मगर बाग़ नहीं है वायज़
ख़ुल्द[6] भी बाग़ है, ख़ैर आब-ओ-हवा और सही।

मुझको वह दो कि जिसे खाके न पानी माँगू
ज़ह्र कुछ और सही आबे-बक़ा[7] और सही।

१—मृत्यु। २—जिसके सौंदर्य से चाँद भी लजाये। ३—वासना के गुलाम। ग़ैर—अर्थात् प्रतिद्वन्दी के मरने का तुम्हे दुख क्यों है। वह तो तुमसे अपनी वासना की पूर्ति के लिये मिलता था। इसलिए उसके जैसे प्रेमी तो तुम्हें बहुत मिल जायँगे। मतलब यह है कि मैं ही तुम्हारा सच्चा प्रेमी हूँ। ४,५—ख़ुदाई का घमंड। यहाँ बुत के माने हैं सुन्दरता की तस्वीर और ख़ुदावन्द माने स्वामी, मालिक कहते है तुमको मैं अपना मालिक तो मानता ही हूँ, फिर क्या हर्ज है यदि तुम ख़ुदावन्द ही कहलाओ। इस प्रकार तुम घमंड और अभिमान के इलज़ाम से भी बचे रहोगे। ५—ख़ुल्द अर्थात् स्वर्ग। इस शेर में 'मगर' शब्द 'शायद' के अर्थ में आया है। वाइज़ या उपदेशक से कहते हैं कि तुम जो हर समय जन्नत जन्नत (ख़ुल्द) की रट लगाते रहते हो, शायद दुनिया में कोई और बाग़ है ही नहीं। मतलब यह कि दुनिया मे हज़ारों बाग़ हैं, वैसा ही बाग स्वर्ग भी होगा यह दूसरी बात है कि उसकी आब ओ-हवा कुछ और हो। ७—'पानी न माँगू' के दो अर्थ है। एक तो यह कि ऐसा जहर खालूँ कि पानी न माँग सकूँ यानी तुरन्त मर जाऊँ। दूसरे यह कि प्यास ही न लगे, यह अर्थ आबे-बक़ा (अमृत) से सम्बन्ध रखता है। दोनों पदार्थ एक दूसरे के बिलकुल विपरीत प्रभाव वाले हैं फिर भी दोनो का किस सुन्दर ढङ्ग से ज़िक्र किया गया है।

तेरे कूचे का है मायल दिले-मुजतर मेरा
काबा एक और सही क़िबला-नुमा और सही।[1]
हुस्न में हूर से बढ़कर नहीं होने के कभी
आपका शेवा-ओ-अंदाज़-ओ-अदा और सही।[2]
क्यों न फ़िरदौस[3] को दोज़ख़ से मिलालें यारब
सैर के वास्ते थोड़ी सी फिज़ा[4] और सही।
मुझसे 'ग़ालिब' यह 'अलाई' ने[5] ग़ज़ल लिखवाई,
एक बेदाद-गरे-रंज-फ़ज़ा और सही।

:: ९९ ::

मसजिद के ज़ेरे-साया ख़राबात चाहिये
भौं पास आँख क़िबलाए-हाजात चाहिये।[6]

१—काबा और क़िबला नुमा दोनों का मतलब यहाँ पवित्र स्थान से है। कहते हैं मेरा व्याकुल मन तेरे कूचे की ओर आकृष्ट हो रहा है। अच्छा है अब एक काबा की जगह दो काबा हो जायँगे। २—तुम सुन्दरता मे हूर से भी बढ़कर हो। दूसरे उससे बढ़कर न होंगे चाहे उनमें तुम्हारी तरह नाज व अदा भी आ जाय ३—स्वर्ग। ४—वायुमण्डल। ५—'अलाई' लुहारू के नवाब अलाउद्दीन का तख़ल्लुस था। वे 'ग़ालिब' के बड़े दोस्त थे। उन्हें प्यार से बेदाद करने वाला और रंज बढ़ाने वाला कहा गया है। ग़ालिब इस प्रकार की फ़रमायशों को भी एक बेदाद कहते हैं। ६—क़िब लए हाजात दूसरों की हाजत या आवश्यकताएँ पूरी करने वाले को कहते हैं। यहाँ शायर इस नाम से वाइज़ या उपदेशक को सम्बोधित कर कहता है कि मसजिद के नीचे मधुशाला भी होनी चाहिये। भौं और आँख की उपमा इसलिये दी गई है कि भौं मेहराब की तरह होती है इस-लिये उसे मसजिद कहा है और आँख को उसकी मस्ती के कारण मधुशाला कहा गया है। कहते हैं जैसे खुदा ने भौं के नीचे आँख बनाई है वैसे ही मसजिद के नीचे (ज़ेरे-साया = छाँव में) शराब-खाना होना चाहिये।

सीखे है महरुख़ों[1] के लिए हम मुसव्विरी
तक़रीब[2] कुछ तो बहरे-मुलाक़ात[3] चाहिये।

मय से ग़रज़ निशात[4] है किस रूसियाह[5] को
एक गूना[6] बेखुदी मुझे दिन रात चाहिये।

है रंगे-लाला-ओ-गुल-ओ-नसरीं जुदा जुदा
हर रंग में बाहर का असबात चाहिये।[7]

सर पाए ख़ुम पै चाहिये हंगामे-बेखुदी
रू सूए-क़िबला वक़्ते-मनाजात चाहिये।[8]

१—चाँद सी सूरत वालों। २—बहाना। ३—मुलाक़ात के लिये। कहते हैं हमने सुन्दर रूप वालों से मिलने के बहाने के लिये चित्रकारी सीखी है। ४—आनन्द। ५—रू = चेहरा, सियाह = काला। ६—एक प्रकार की। अपने को रू-सियाह उसी प्रकार कहा है जैसे कमबख्त, अभागा कहा जाता है। यानी शराब मैं आनन्द और मस्ती के लिये नहीं पीता। मै तो अपने को आत्मविस्मृत बनाने के लिए मदिरा पान करना चाहता हूँ, जिसमें कि संसार के दुखों चिंताओं से मुक्ति पा सकूँ। ७—लाला, गुलाब और सेवती इन सबके रंग भिन्न हैं लेकिन हर रंग से बाहर का सबूत मिलता है शायर का मतलब है कि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अपने रंग मे कितनी ही भिन्नता रखती हो, फिर भी हमें सब में उस निराकार की झलक दिखाई देती है जिसने उनकी रचना की है। ८—पाय-खुम अर्थात् शराब के मटके के पाँव पर शराब से मस्त होकर सर झुका दो जैसे लोग ईश्वर से प्रार्थना करते समय पश्चिम (उधर काबा है इसलिये) की ओर मुँह करते हैं। मतलब यह है कि शराबी के लिये शराब का मटका भी काबे से कम नहीं होना चाहिये

नश्वो-नुमा[1] है अस्ल से 'ग़ालिब' फ़रोअ[2] को
खामोशी ही से निकले है जो बात चाहिये।

:: १०० ::

रहे उस शोख़ से आज़ुर्दा[3] हम चन्दे तकल्लुफ़ से
तकल्लुफ़ बरतरफ़ था एक अन्दाज़े जुनूँ[4] वो भी।

ख़याले-मर्ग[5] कब तसकीं दिले-आज़ुर्दा को बख़्शे
मेरे दामे तमन्ना मे है एक सैदे-ज़बूँ[6] वो भी।

न करता काश नाला मुझको क्या मालूम था हमदम
कि होगा बाइसे-अफ़ज़ायशे दर्दे दुरू[7] वो भी।

१—विकास। २—शाखाओं। अस्ल अर्थात् जड़ ही से शाखाएँ विकसित होती है। इसी प्रकार मनुष्य खामोशी में हर बात सोचता है और उसी खामोशी में उन बातों के जवाब भी सोच लेता है। इसका मतलब यह हुआ कि खामोशी ही हर बात की जड़ है। ३—ख़फ़ा, नाराज। यानी उस शोख़ से हम चन्द दिनों जो ख़फ़ा रहे वह भी एक बनावट थी। पर असल बात यह है कि वह भी एक पागलपन था। नहीं तो हम और उससे ख़फ़ा हों। प्रेमी के लिये यह सम्भव ही नहीं। ४—मृत्यु का विचार। ५—तमन्ना का जाल। ६—कमजोर शिकार। कहते हैं मेरे दुखी हृदय को मृत्यु का विचार भी कोई सान्त्वना नहीं दे सकता। मुझे मौत भी नहीं आ सकती। वह भी मेरी इच्छाओं और आशाओं के जाल में फँसा तड़पता हो और जाल को तोड़कर बाहर निकलने की शक्ति न रखता हो। ७—आंतरिक पीड़ा बढ़ाने का कारण। मुझे यदि पता होता कि रुदन करने से मेरे मन की पीड़ा और बढ़ जायगी तो कभी ऐसा न करता। क्योंकि रुदन का कोई-प्रभाव न पड़ने के कारण मेरी व्याकुलता और पीड़ा और बढ़ गई है

मए-इशरत की ख्वाहिश साक़िये-गर्दू[1] से क्या कीजे
लिये बैठा है एक दो चार जामे-वाजगू[2] वो भी।

मेरे दिल में है 'ग़ालिब' शौक़े-वस्ल-शिकवाए-हिजराँ
खुदा वह दिन करे जो उससे मैं यह भी कहूँ वो भी।[3]

:: १०१ ::

रंज ताक़त से सिवा हो तो नवेहूँ क्यों कर
ज़ेहन में ख़ूबिये-तसलीम ओ-रज़ा है तो सही।[4]

है ग़नीमत कि ब-उम्मीद गुज़र जायगी उम्र
न मिले दाद मगर रोज़े-जज़ा है तो सही।[5]

१—आसमान का साक़ी। २—औंधे प्याले। असल में ईश्वर को साक़िये-गर्दू कहा गया है। कहते हैं उससे खुशी की शराब माँगने से क्या लाभ। वह भी तो एक दो चार औंधे प्याले लिये बैठा है। औंधा प्याला आकाश को कहा गया है। आकाशों की संख्या सात मानी गई है इसलिये एक दो चार अर्थात् सात कहा है। मतलब यह है कि उसके प्याले तो स्वयं औंधे पड़े हैं वह हमें क्या शराब देगा। ३—मेरे दिल में मिलने का शौक़ भी है और वियोग की शिकायतें भी। खुदा वह दिन लाए जब मैं उससे दोनों बातें करूँ। ४—मेरे मन में यह खूबी अवश्य है कि मैं उसकी प्रत्येक जफ़ा को तसलीम (स्वीकार) करूँ और राजी (रज़ा) रहूँ, पर जब दुख मेरी सहन शक्ति से आगे बढ जाय तो क्या करूँ। ५—यही बहुत है कि जीवन इस आशा के साथ बीत जायगा कि यहाँ मैं जिस साहस से प्रेम के कष्ट झेल रहा हूँ उसकी कोई प्रशंसा न करे किन्तु क़यामत के दिन (रोज़े-जज़ा) जब हर व्यक्ति को उसके भले बुरे कर्मों का फल मिलेगा, मुझे भी मेरे दुखों का पुरस्कार मिलेगा

दोस्त गर कोई नहीं है जो करे चारा गरी।
न सही, लेक तमन्नाए दवा है तो सही।[1]
ग़ैर से देखिये क्या ख़ूब निवाही उसने
न सही हम से, पर उस बुत में वफ़ा है तो सही।
नकल करता हूं उसे नामए आमाल[2] में मैं
कुछ न कुछ रोज़े अज़ल[3] तुमने लिखा है तो सही।
कभी आजायगी क्यों करते हो जल्दी 'ग़ालिब'
शोहरए-तेज़िये शमशीरे-क़ज़ा है तो सही।[3]

:: १०२ ::

ता हम को शिकायत की भी बाक़ी न रहे जो
सुन लेते हैं गो ज़िक्र हमारा नहीं करते।
'ग़ालिब' तेरा अहवाल सुना देंगे हम उनको
वो सुन के बुला लें ये इजारा नहीं करते।

१—चारागरी अर्थात् इलाज। कहते हैं कोई दोस्त इलाज करने वाला नहीं है तो न सही, लेकिन अभी दवा करने की इच्छा तो है अर्थात् अभी अच्छे होने की आशा है। इसका यह भी मतलब है कि तमन्ना ही चिकित्सक सिद्ध होगी और इसी तमन्ना में जीते रहेंगे। २—अलामा नामा उस काग़ज को कहते हैं जिसमें मनुष्य के भले बुरे कर्म लिखे जाते हैं और कयामत के दिन ख़ुदा उसी के अनुसार मनुष्य से 'पूछ-ताछ' करेगा। 'ग़ालिब' उस दिन की कल्पना कर ईश्वर से कहते हैं कि मैंने तो संसार में वही किया जो तूने सृष्टि की रचना के समय मेरे भाग्य में लिख दिया था। और जब मैंने वही किया जो तूने लिखा था तो अपने आमाल नामे में मैंने एक प्रकार से वही नक़ल कर दिया है। फ़िर मुझसे पूछ-ताछ न करना।
३ शोहरए-तेज़िये का अर्थ है "मृत्यु की की तेजी की प्रसिद्ध।

:: १०३ ::

घर में था क्या जो तेरा ग़म उसे ग़ारत करता
वो जो रखते थे हम एक हसरते तामीर[1] सो है।

:: १०४ ::

ग़मे-दुनिया से गर पाई भी फ़ुरसत सर उठाने की
फ़लक का देखना तक़रीब तेरे याद आने की।[2]

खुलेगा किस तरह मजमूं मेरे मक्तूब[3] का यारब
क़सम खाई है उस काफ़िर ने काग़ज़ के जलाने की।

उन्हें मंजर अपने ज़ख्मियों का देख आना था
उठे थे सैरे-गुल को देखना शोख़ी बहाने की।[4]

१—निर्माण की अभिलाषा। कहते हैं, घर के पुनर्निर्माण करने की हसरत के सिवा हमारे घर मे और क्या था कि प्रेम का दुख उसे बरबाद करता। यही निर्माण की अभिलाषा बाकी रह गई थी सो अब भी है और प्रेम का दुख भी उसे नष्ट नही कर सका। २—कहते हैं कि दुनिया के लोगों से तनिक छुटकारा मिला भी तो सिर उठाने पर आस्मान नजर आ जाता और वह भी मुझ पर अत्याचार करता रहता है इस कारण उसको देखते ही तू याद आ जाता है और मैं फिर दुखी हो जाता हूँ। ३—पत्र। ४—अर्थात् वे अपने घायलों को देखना वैसा ही समझते हैं जैसे फूलों को देखने के लिये बाग़ की सैर करना बहाने की शोखी स्पष्ट है

हमारी सादगी थी इलतफाते-नाज़ पर मरना
तेरा आना न था ज़ालिम मगर तमहीद जाने की[1]
करूँ क्या खूबिये औजाए-अबनाए जमाँ[2] 'ग़ालिब'
बदी की उसने जिससे हमने की थी बारहा नेकी।

:: १०५ ::

दर्द से मेरे है तुझको बेक़रारी हाय-हाय!
क्या हुई ज़ालिम तेरी ग़लफत शआरी हाय हाय[3]
तेरे दिल में गर न था आशोबेग़म का हौसला
तूने फिर क्यों की थी मेरी ग़मगुसारी हाय-हाय।[4]
क्यों मेरी ग़मख्वारगी का तुझको आया था खयाल
दुश्मनी अपनी थी मेरी दोस्त दारी हाय-हाय।[5]

१—दूसरी पंक्ति में 'मगर' शब्द 'सवा' या 'सिवाय' के अर्थ में आया है। कहते हैं यह तो हमारी सादगी थी कि हम इसे तेरा प्रेम समझे और तेरे प्रेम पर मरते रहे, लेकिन जालिम! तेरा आना सिवाय तेरे जाने की भूमिका के और कुछ नहीं था, यानी तू आया और तुरन्त लौट गया। २—दुनिया वालों के व्यवहार की खूबी। यह मक़ता सीधा साधा है। केवल 'खुशी' शब्द व्यंग के रूप में आया है। ३—यह ग़ज़ल माशूक की मृत्यु पर मर्सिये के रूप में लिखी गई है। उसे मरते देख कर कहते हैं कि हाय-हाय, तू मेरे दर्द से व्याकुल है। इससे अच्छा तो यही था कि तू बेपरवाही (गफ़लत शआरी) ही करता रहता और मेरे हाल पर ध्यान न देता। यहां 'ज़ालिम' इसलिये कहा गया है कि माशूक ने बेपरवाही छोड़कर अपने ऊपर जुल्म किया है। ४—यदि ग़म सहने की ताब नहीं थी तब तूने मेरे दुख में क्यों हाथ बंटाना चाहा, क्यों ग़म—ख्वार बना। ५—मेरे ग़मख्वार बनने और दोस्ती निभाने में तूने अपने साथ दुश्मनी की

:: १०३ ::

घर में था क्या जो तेरा ग़म उसे ग़ारत करता
वो जो रखते थे हम एक हसरते तामीर[1] सो है।

:: १०४ ::

ग़मे-दुनिया से गर पाई भी फ़ुरसत सर उठाने की
फ़लक का देखना तक़रीब तेरे याद आने की।[2]

खुलेगा किस तरह मजमूं मेरे मक़तूब[3] का यारब
क़सम खाई है उस काफ़िर ने काग़ज़ के जलाने की।

उन्हें मंजर अपने ज़ख्मियों का देख आना था
उठे थे सैरे-गुल को देखना शोख़ी बहाने की।[4]

१—निर्माण की अभिलाषा। कहते हैं, घर के पुनर्निर्माण करने की हसरत के सिवा हमारे घर में और क्या था कि प्रेम का दुख उसे बरबाद करता। यही निर्माण की अभिलाषा बाकी रह गई थी सो अब भी है और प्रेम का दुख भी उसे नष्ट नहीं कर सका। २—कहते हैं कि दुनिया के लोगों से तनिक छुटकारा मिला भी तो सिर उठाने पर आसमान नजर आ जाता और वह भी मुझ पर अत्याचार करता रहता है इस कारण उसको देखते ही तू याद आ जाता है और मैं फिर दुखी हो जाता हूँ। ३—पत्र। ४—अर्थात् वे अपने घायलों को देखना वैसा ही समझते हैं जैसे फूलों को देखने के लिये बाग की सैर करना बहाने की शेखी स्पष्ट है

हमारी सादगी थी इलतफाते-नाज़ पर मरना
तेरा आना न था ज़ालिम मगर तमहीद जाने की[1]
करूँ क्या ख़ूबिये औजाए-अबनाए जमाँ[2] 'ग़ालिब'
बदी की उसने जिससे हमने की थी बारहा नेकी।

:: १०५ ::

दर्द से मेरे है तुझको बेक़रारी हाय-हाय!
क्या हुई जालिम तेरी ग़लफत शआरी हाय हाय[3]
तेरे दिल मे गर न था आशोबेग़म का हौसला
तूने फिर क्यों की थी मेरी ग़मगुसारी हाय-हाय।[4]
क्यों मेरी ग़मख्वारगी का तुझको आया था खयाल
दुश्मनी अपनी थी मेरी दोस्त दारी हाय-हाय।[5]

१—दूसरी पंक्ति में 'मगर' शब्द 'सवा' या 'सिवाय' के अर्थ में आया है। कहते है यह तो हमारी सादगी थी कि हम इसे तेरा प्रेम समझे और तेरे प्रेम पर मरते रहे, लेकिन जालिम! तेरा आना सिवाय तेरे जाने की भूमिका के और कुछ नही था, यानी तू आया और तुरन्त लौट गया। २—दुनिया वालों के व्यवहार की खूबी। यह मक़ता सीधा साधा है। केवल 'खुशी' शब्द व्यंग के रूप में आया है। ३—यह ग़ज़ल माशूक की मृत्यु पर मर्सिये के रूप में लिखी गई है। उसे मरते देख कर कहते हैं कि हाय-हाय, तू मेरे दर्द से व्याकुल है। इससे अच्छा तो यही था कि तू बेपरवाही (ग़फलत शआरी) ही करता रहता और मेरे हाल पर ध्यान न देता। यहाँ 'जालिम' इसलिये कहा गया है कि माशूक ने बेपरवाही छोड़कर अपने ऊपर जुल्म किया है। ४—यदि ग़म सहने की ताब नहीं थी तब तूने मेरे दुख में क्यों हाथ बँटाना चाहा, क्यों ग़म—ख्वार बना। ५—मेरे बनने और दोस्ती निभाने में तूने अपने साथ दुश्मनी की

उम्र भर का तूने पैमाने वफ़ा बाँधा, तो क्या
उम्र को भी तो नहीं है पायदारी हाय-हाय ।[१]

ज़हर लगती है मुझे आब-ओ-हवाए-ज़िन्दगी
यानी तुझसे थी उसे नासाजगारी हाय-हाय ।[२]

गुलफ़िशानीहाय नाज़े-जलवा को क्या हो गया
खाक पर होती है तेरी लालाकारी हाय ।[३]

शर्मे-रुसवाई से जा छिपना नक़ाबे—खाक में
खत्म है उलफ़त की तुझपर पर्दादारी हाय-हाय ।[४]

खाक में नामूसे-पैमाने-मुहब्बत मिल गई
उठ गई दुनिया से राह-ओ-रस्मे-यारी हाय-हाय ।[५]

हाथ ही तेग़ अज़मा का काम से जाता रहा
दिल पै एक लगने न पाया ज़ख्मे-कारी हाय-हाय ।[६]

१—अर्थात् तूने उम्र भर मेरे साथ वफ़ादार रहने का वचन दिया परन्तु उम्र भी तो पायदार नहीं है। आज इसका प्रमाण तेरे सामने है। २—जिन्दगी की आब-ओ-हवा मुझे जहर लगती है, कारण कि यह तेरे लिए अनुकूल नहीं सिद्ध हुई। मेरे लिए अनुकूल न होती तो कोई बात नहीं थी। ३—तेरे जलवे फूल बरसाया करते थे। अब उन्हें क्या हो गया, वे क्यों उदास हो गये। अब तो तेरी खाक अर्थात् क़ब्र पर फूल उगे हुए देख रहा हूँ। ४—तू बदनामी की शर्म से मिट्टी की नकाब में छिप गया। इस प्रकार तूने उलफ़त की पर्दादारी खत्म कर दी। ऐसा पर्दा तो दूसरा कोई भी न करता। ५—प्रेम निभाने के वचन की इज्जत मिट्टी में मिल गई क्योंकि अब तू नहीं है तो कौन अपने वचन को इस प्रकार निभायेगा। अब दुनिया से वफ़ादारी की रस्म ही उठ गई। प्रीति निभाने वाला ऐसा कोई दूसरा न पैदा होगा। ६—तेग़ चलाने वाला (तेरा) हाथ ही काम न कर सका और मेरे घायल होने की इच्छा मन की मन ही में रह गई।

किस तरह काटे कोई शबहाए तारे-बर्शगाल
है नज़र ख़ू कर्दए अख़्तर-शुमारी हाय-हाय।[1]

गोशे-महजूरे-पयाम-ओ - चश्मे - महरूमे - जमाल
एक दिल तिस पर ये नाउम्मीदवारी हाय-हाय।[2]

इश्क़ ने पकड़ा न था 'ग़ालिब' अभी वहशत का रंग
रह गया था दिल में जो कुछ ज़ौक़े-ख़्वारी हाय-हाय।[3]

:: १०६ ::

इश्क़ मुझको नहीं वहशत ही सही
मेरी वहशत तेरी शोहरत ही सही।[4]

क़तअ[5] कीजे न तअल्लुक़ हमसे
कुछ नहीं है तो अदावत[6] ही सही।

१—शब हाय तारे-बर्शगाल, अर्थात् बरसात की काली रातें कैसे काटें क्योंकि आँखों को तो अख़्तर शुमारी (तारे गिनने) की आदत है। २—गोशे- महजूरे-पयाम अर्थात् कान संदेश सुनने को तरसते हैं और चश्म महरूमे-जमाल अर्थात् आँख रूप देखने से वंचित है। केवल एक ही हृदय है और इतनी निराशाएँ हैं। ३—प्रेम ने अभी वहशत या पागलपन का रंग नहीं पकड़ा था। प्रेम में और अधिक बरबाद होने का चाव रह ही गया। ४—प्रिय के यह कहने पर कि तुम्हें मुझसे इश्क़ नहीं, वहशत और पागलपन है, प्रेमी कहता है, चलो पागलपन ही सही, पर तुझे तो खुश होना चाहिये क्योंकि मेरे पागलपन से तेरा नाम होता है, तेरी ख्याति (शोहरत) बढ़ती है। ५—काटना। ६—वैर। कहते है अपना सम्बन्ध मुझसे बिलकुल ही न तोड़ दो। यदि प्रेम नहीं तो वैर ही सही, कुछ सम्बन्ध अवश्य रखो।

मेरे होने में, है क्या रुसवाई
ए वो मजलिस नहीं ख़लवत[१] ही सही

हम भी दुश्मन तो नहीं हैं अपने
ग़ैर को तुझसे मुहब्बत ही सही।

अपनी हस्ती ही से हो जो कुछ हो
आगही गर नहीं ग़फ़लत ही सही।[२]

उम्र हर चन्द कि है बर्क़-ख़राम
दिल के ख़ूं करने की फ़ुरसत ही सही।[३]

हम कोई तर्के-वफ़ा करते हैं
न सही इश्क मुसीबत ही सही।[४]

कुछ तो दे ए फ़लके-ना-इन्साफ
आह ओ फरियाद की रुख़सत ही सही।[५]

१—एकान्त। कहते हैं मेरे होने मे बदनामी क्या है। यदि तुम सभा (मजलिस) में नही मिलते तो एकान्त में ही मिलो। वैसे बदनाम तो सबके सामने भी मिलने में नहीं है परन्तु एकान्त मे मिलने से तो बदनामी की जरा भी आशंका नहीं रहेगी। २—आगही अर्थात् आगाही (ज्ञान)। हम क्या है, यदि हम इस तथ्य को नही जान सकते तो अपनी हस्ती को भूल ही जाओ। इस प्रकार अपनी हस्ती का ज्ञान आप ही आप प्राप्त हो जायगा। ३—यद्यपि उम्र बिजली की सी तीव्र गति से बीत रही है परन्तु प्रेम के दुख में दिल का ख़ून कर देने के लिये यह समय बहुत काफी है। ४—तुम हमें वफा को त्यागने का दोषी ठहराते हो और कहते हो हम प्रेम नही करते। यही सही, तुम समझ लो कि हम एक मुसीबत झेल रहे है, अब दया करो। इसका दूसरा सादा अर्थ यह है हम प्रीति का मार्ग न छोड़ेंगे चाहे प्रिय कितने ही जुल्म करे। समझ लेंगे कि यह इश्क नहीं एक मुसीबत है। ५—अन्यायी आकाश से कहते हैं कि और कुछ नही देता तो आह और फरियाद करने की इजाजत ही दे दे जिसमें कि हम जी भर कर रो धो लें।

हम भी तसलीम की ख़ू डालेंगे
बेनियाज़ी तेरी आदत ही सही।[1]
यार से छेड़ चली जाय 'असद'
गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही।

:: १०७ ::

ढूँढ़े है उस मुग़न्नियें आतिश-नफ़स को जी
जिसकी सदा हो जलवए-बर्क़े फ़ना मुझे।[2]
मस्ताना तय करूँ हूँ रहे वादिये-ख़याल
ता बाज़गश्त से न रहे मुद्दआ मुझे।[3]
करता है बस कि बाग़ में तू बे हिजाबियाँ
आने लगी है नकहते-गुल से हया मुझे।[4]

१—हम भी अब यह आदत डाल लेंगे कि तेरी इच्छा पर चलें। तू अपनी उपेक्षा की आदत न छोड़ेगा न सही, जब हम में भी सहन-शीलता आ जायगी तब तेरी यह उपेक्षा भी हमें अच्छी लगेगी। २—मुग़न्नी गायक को कहते हैं और आतिश-नफ़स का शाब्दिक अर्थ तो होगा की सांस परन्तु यहाँ इसका अर्थ है वह गायक जिसके स्वर मे आग भरी हो। कहते हैं मेरे कान ऐसे गायक को सुनना चाहते हैं जिसकी आवाज में आग भरी हो और जो मौत की बिजली (बर्क़े-फ़ना) गिरा कर मुझे मार डाले अर्थात् मै अपने को भूल जाऊँ। ३—रहे वादिये ख्याल=विचारों के मार्ग की घाटी। बाजगश्त= प्रतिध्वनि। मुद्दआ=मतलब। अपने विचारों के मैदान में मस्तों की तरह तेज चाल से जा रहा हूँ। इतनी तेज़ी से कि अपने पद-चाप भी न सुनाई पड़े। ४—तू बाग़ में फूलों के रूप में अपना जलवा दिखाता है। यह बेहिजाबी (बे पर्दा होना) है। पहले मैं फूलों की सुगन्ध (नकहते-गुल) को कहा करता था कि बेहिजाब होकर इधर-उधर फिरती है परन्तु अब तुझे फूलों के रूप में देख कर मैं सुगन्ध पर आरोप लगाने पर लज्जित हूँ।

खुलता किसी पै क्यों मेरे दिल का मआमला
शेरों के इन्तख़ाब ने रुसवा किया मुझे।[1]

:: १०८ ::

उस बज़्म में मुझे नहीं बनती हया किये
बैठा रहा अगरचे इशारे हुआ किये।[2]

दिल ही तो है सियासते-दरबाँ से डर गया
मैं और जाऊँ दर से तेरे बिना सदा किये।[3]

बे सर्फ़ा ही गुज़रती है हो गरचे उम्रे-ख़िज्र
हज़रत भी कल कहेंगे कि हम क्या किया किये।[4]

१—इन्तख़ाब=चुनाव। मैंने सभा में पढ़ने के लिये अपने जो शेर चुने उन्हें सुन लोगों ने मेरे मन की बात जान ली और मैं रुसवा (बदनाम) हो गया। २—कहते हैं प्रिय की महफ़िल मे वे शर्मी से बैठा रहा यद्यपि लोग इशारे करते रहे, आवाज़ें कसते रहे। मैं क्या करूँ, वहाँ न जाऊँ, यह मेरे बस की बात नही और जाता हूँ तो आत्म-सम्मान ('हया' शब्द यहाँ इसी अर्थ में आया है) की रक्षा नहीं हो सकती। ३—दरबान की धमकियों और घुड़कियों से डर गया, नही तो भला मै बिना पुकारे तेरे द्वार से लौट आऊँ। ४—बेसर्फ़ा=बे फ़ायदा। ख़िज्र एक पैग़म्बर थे जिन्हें और नदियों का मालिक कहा जाता है। वे भूलों भटकों को राह बताते हैं इसलिये 'ख़िज्र' शब्द का अर्थ 'पथ-प्रदर्शक' भी माना जाता है। उनकी आयु बहुत लम्बी थी। ग़ालिब कहते हैं कि सांसारिक झंझटों में ही उम्र बीत जाती है और इससे वह लाभ नही होता जो अपने को पहचानने में समय लगाने में होना चाहिये, ख़िज्र की भाँति लम्बी उम्र भी इस प्रकार बे फ़ायदा ही होगी। ख़िज्र से पूछा जाय तो वे भी यह नहीं बता सकगे कि हमने इस उद्देश्य पर कहाँ तक ध्यान दिया

मक़दूर[1] हो तो ख़ाक से पूछूँ कि ओ लईम[2]
तूने वो गञ्जहाय-गराँ-माया[3] क्या किये ?

किस रोज़ तोहमतें न तराशा किये उदू ?
किस दिन हमारे सर पै न आरे चला किये।

ज़िद की है और बात मगर ख़ू बुरी नहीं
भूले से उसने सैकड़ों वादे वफ़ा किये।

'ग़ालिब' तुम्हीं कहो कि मिलेगा जवाब क्या
माना कि तुम कहा किये और वो सुना किये ?

:: १०६ ::

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्ल से गुज़री 'ग़ालिब'
हम भी क्या याद करेंगे कि ख़ुदा रखते थे।

:: ११० ::

देखना क़िस्मत कि आप अपने पै रश्क[4] आ जाय है
मैं उसे देखूँ, भला कब मुझसे देखा जाय है।

हाथ धो दिल से यही गर्मी गर अन्देशे[5] में है
आबगीना[6] तुन्दिये-सहबा[7] से पिघला जाय है।

१—सामर्थ्य। २—कृपण। ३—बड़े-बड़े ख़ज़ाने (मतलब बड़े व्यक्तित्व से है।) ४—ईर्ष्या। जब उसके दर्शन हुए तो अपने आपसे ईर्ष्या होने लगी और उसके दर्शनों का आनन्द न प्राप्त हो सका। अपने को भी ग़ैर समझ लेना अतिशयोक्ति की चरम सीमा है। ५—विचार। ६—शीशे का प्याला। ७—शराब की गर्मी। प्रेम के विचार इतने गर्म हैं तो दिल से हाथ धोना ही पड़ेगा। दूसरी पंक्ति में शीशा दिल को कहा गया है और प्रेम के विचारों की गर्मी को तुन्दिये-शराब कहा है। अर्थात् दिल का शीशा विचारों की गर्मी से पिघला जा रहा है।

ग़ैर को यारब ! वो क्यों कर मनए-गुस्ताख़ी करे
ग़र हया भी उसको आती है तो शर्मा जाय है ।[1]

शौक़ को ये लत कि हर दम नाला खींचे[2] जाइये
दिल की वो हालत कि लेने से घबरा जाय है ।

दूर चश्मे-बद ! 'तेरी बज़्मे-तरब से वाह वा !
नग़मा हो जाता है वाँ गर नाला मेरा जाय है ।[3]

गरचे है तर्ज़े-तग़ाफुल पर्दा दारे-राज़े-इश्क
पर हम ऐसे खोए जाते है कि वो पा जाय है ।[4]

उसकी बज्म आराइयाँ[5] सुनकर दिल रंजूर[6] यां !
मिस्ले-नक़्शे-मुद्दआए ग़ैर[7] बैठा जाय है ।

१—दूसरी पंक्ति में हया और शर्म दोनों एक ही अर्थ वाले शब्द लाकर और उनको सार्थक करके शायर ने कमाल कर दिया है। जो बात कही है वह भी स्वाभाविक है। २—नाला खींचना = रुदन करना। ३—चश्मे-बद = बुरी नज़र। बज़्मे तरब = खुशी की महफ़िल। कहते हैं तेरी खुशी की महफ़िल का क्या कहना ! वहाँ तो मेरा रुदन भी गीत बन जाता है। ईश्वर उसे बुरी नजर से बचाये। मतलब यह है कि मेरा रुदन सुन कर तू खुश होता है। ४—तर्ज़े-तग़ाफ़ल = उपेक्षा का ढंग। कहते हैं हम प्रेम के भेद को अनजान बनकर छिपाते रहते हैं परन्तु कभी-कभी उसके प्रेम में व्याकुल हो ऐसे लीन हो जाते हैं कि वह इस भेद को पा जाता है। ५—महफ़िल सजाने का हाल। ६—दुखी हृदय। ७—ग़ैर के प्रेम की छाप के समान मेरा दुखी हृदय यह सुन कर कि आज उसने फिर महफ़िल सजाई है, उसी प्रकार बैठा जा रहा है जैसे उसके हृदय पर दूसरे के प्रेम की छाप बैठी है

होके आशिक़ वह परी रुख़ और नाज़ुक बन गया
रङ्ग खिलता जाय है जितना कि उड़ता जाय है।

नक़्श[1] को उसके मुसव्विर पर भी क्या नाज़ हैं
खींचता है जिस क़दर उतना ही खिंचता जाय है

साया मेरा मुझसे मिस्ले-दूद[2] भागे है 'असद'
पास मुझ आतिश बजाँ[3] के किस से ठहरा जाय है।

:: १११ ::

उग रहा है दर-ओ-दीवार से सब्ज़ा 'ग़ालिब'
हम बियाबाँ में हैं और घर में बहार आई है।[4]

:: ११२ ::

सादगी पर उसकी मर जाने की हसरत दिल में है
बस नहीं चलता कि फिर खञ्जर क़फ़े-क़ातिल[5] में है।

१—चित्र। २—धुएँ की तरह। ३—जिसके तन में आग भड़कती हो। मेरे शरीर मे प्रेम की आग ऐसी भड़की है कि उसकी आँच से मेरी परछाईं भी मुझसे भागती है। ४—हम प्रेम में पागल होकर जंगल में घूम रहे हैं यद्यपि घर में भी हमारे न रहने से दर-ओ-दीवार पर घास उग आई होगी और वही जंगल बन गया होगा। ५—क़ातिल के हाथ। हम तो उसकी सादगी ही पर जान दे देना चाहते हैं परन्तु वह बार-बार यह सादगी छोड़ कर खंजर हाथ में ले लेता है और हमारे दिल में उसकी सादगी पर मर मिटने की हसरत ही रह जाती है।

देखना तक़रीर[1] की लज़्ज़त कि जो उसने कहा
मैंने यह जाना कि गोया यह मेरे दिल में है।

गरचे है किस किस बुराई से वले बाईं-हमा[2]
ज़िक्र मेरा मुझसे बेहतर है कि उस महफ़िल में है।

है दिले शोरीदए-'ग़ालिब' तिलिस्मे पेच ओ-ताब
रह्म कर अपनी तमन्ना पर कि किस मुश्किल में है।[3]

:: ११३ ::

दिल से तेरी निगाह जिगर तक उतर गई
दोनों को एक अदा में रज़ामन्द[4] कर गई।
शक़[5] हो गया है सीना खुशा लज़्ज़ते-फ़िराक़[6]
तकलीफ़े-पर्दादारिये ज़ख्मे-जिगर गई।

१—भाषण। इससे बढ़ कर किसी की बातों की क्या तारीफ़ हो सकती है कि जो कुछ वह कहे उसे सुनने वाला यह समझे कि यही मेरे मन में भी था। २—इसके बावजूद। कहते है, यद्यपि उसकी महफ़िल में मेरी बुराई ही बुराई होती है परन्तु फिर भी चर्चा मुझसे अच्छी है कि उसकी महफ़िल में उसकी पहुँच तो है। ३—ग़ालिब का पागल हृदय इतना व्याकुल है कि उसके पेच ताब के तिलिस्म में तेरी तमन्ना क़ैद होकर रह गई है, उसे निकलने का कोई रास्ता ही नहीं मिलता। इस पर दया कर और इसे इस मुश्किल से निकाल। ये तेरी ही तमन्ना है। अपनों पर तो सभी तरस खाते हैं। ४—'रज़ामन्द कर गई, का यहाँ अर्थ है दोनों मोहित हो गए। ५—फट गया। ६—विरह का मजा। तेरे विरह का मजा कितना अच्छा है कि उससे मेरा सीना फट गया और अब जिगर के घाव को छिपाने की तक़लीफ न करनी पड़ेगी।

उड़ती फिरे है खाक मेरी कूए यार में
बारे, अब हवा ए हविसे-बाल-ओ-पर गई।[१]

हर बुलहवस ने हुस्न-परस्ती शआर की
अब आबरूए-शेवए-अहले नज़र गई।[२]

नज़्ज़ारा[३] ने भी काम किया वाँ नक़ाब का
मस्ती से हर निगाह तेरे रुख पर बिखर गई।

मारा ज़माने ने 'असदुल्लाह खाँ' तुम्हें
वह वलवले कहाँ वो जवानी किधर गई।

:: ११४ ::

तसकीं को हम न रोएँ जो ज़ौक़े नज़र[४] मिले
हूराने-खुल्द में तेरी सूरत अगर मिले।

१—मेरी खाक अब यार के कूचे में उड़ रही है। हवा से कहते है, अच्छा है कि अब मुझे पर और बाल की इच्छा नहीं रही क्योंकि धूल को उड़ने में इनकी आवश्यकता नहीं है। २—बुलहवस —वासना रखने वाला। हुस्नपरस्ती शआर की = सौंदर्योपासना को आदत बना लिया। अब उन लोगो की आबरू गई जो सौंदर्य की परख करते थे और सच्चा प्रेम करते थे, क्योंकि अब उन्हें भी झूठा समझा जाने लगा है। ३—दर्शन। इस शेर का मतलब है कि तुझे सब लोग देखकर इतने मस्त हो गए कि दर्शन न कर सके। निगाहों के तार बिखर-बिखर कर नकाब बन गए। ४—ज़ौक़े नज़र से यहाँ मतलब है निगाहों को आनन्द प्राप्त हो। कहते हैं हम अपने मन की सान्त्वना के लिये रोते है क्योंकि तू कहीं दिखायी नहीं पड़ा। शायद खुल्द (स्वर्ग) में कोई हूर तेरी सूरत वाली मिल जाय पर यहाँ तो कोई आशा नहीं।

वह बादए शबाना[1] की सरगर्मियाँ कहाँ
उठिये बस अब कि लज़्ज़ते-ख्वाबे सहर[2] गई।

अपनी गली में मुझको न कर दफन बादे-क़त्ल
मेरे पते से ख़ल्क़[3] को क्यों तेरा घर मिले।

साक़ी-गरी की शर्म करो आज वरना हम
हर शब पिया ही करते है मय जिस कदर मिले।[4]

तुझसे तो कुछ कलाम नहीं लेकिन ए नदीम[5]
मेरा सलाम कहियो अगर नामावर मिले।

तुमको भी हम दिखाएँगे मजनूं ने क्या किया
फ़ुरसत कशाकशे-ग़मे-पिनहाँ से गर मिले।[6]

लाज़िम नहीं कि खिज्र की हम पैरवी करें
माना कि एक बुजुर्ग हमें हमसफ़र मिले।[7]

१—जवानी की शराब। २—सुबह की नीद का मजा। ३— सर्व साधारण। ४—वैसे तो हम रोज ही रात मे जितनी मिल जाय पी लिया करते है पर आज तुम साकी हो इसलिये अधिक पिलाकर अपने साक़ी बनने की लाज रख लो। ५—साथी (नदीम) से कहते हैं कि मुझे तुझसे कुछ नही कहना है लेकिन यदि नामावर (पत्र वाहक) मिल जाय तो उससे सलाम कह देना। इसमें उसकी बेपरवाही की शिकायत भी है और याद दिलाने की बात भी कि वह पत्र का उत्तर नहीं लाया। ६—हम अपनी व्यथा को छिपाये रखना चाहते है परन्तु वह सब पर प्रकट होने के लिये व्याकुल है। इस खींचातानी से फ़ुरसत मिल जाय तब हमारा प्रेम मे पागलपन देखना। हम भी मजनूँ की याद ताजा कर देगे। ७—खिज्र का अनुकरण हमारे लिये जरूरी नही हम प्रेम में अपने को उनसे कम नहीं मानते, उन्हें यात्रा में एक अच्छा साथी भर मानते हैं।

ए साकिनाने-कुचए-दिलदार[1] देखना
तुमको कहीं जो 'ग़ालिबे'-आशुफ़्ता सर[2] मिले।

:: ११५ ::

कोई दिन गर ज़िन्दगानी और है
अपने जी में हमने ठानी और है।
आतिशे-दोज़ख में ये गर्मी कहाँ
सोज़े-ग़महाए-निहानी[3] और है।
बाहरा देखी है उनकी रंजिशें
पर कुछ अब के सर गरानी[4] और है
देके खत मुँह देखता है नामाबर[5]
कुछ तो पैग़ामे-ज़बानी और है।
हो चुकी 'ग़ालिब' बलाएं सब तमाम
एक मर्गे-नागहानी और है।[6]

:: ११६ ::

कोई उम्मीद बर नहीं आती[7]
कोई सूरत[8] नज़र नहीं आती।
मौत का एक दिन मुऐयन[9] है
नींद क्यों रात भर नहीं आती।

१—दिलदार के कूचे के निवासियों से कहते हैं कि ग़ालिब मिल जाय तो उसका प्रेम में पागल होना देखना। वैसे तो तुम भी अपने को उसके प्रेम में व्यकुल कहते हो परन्तु उसे देखोगे तब तुम्हें उसकी महानता का अनुभव होगा। २—परेशान, पागल। ३—अन्तर वेदना की जलन। ४—नाराजी। ५—पत्र वाहक। ६—जितनी बलाएँ (विपदाएँ) मुझ पर आनी थीं वे सब तो आ चुकीं अब केवल मार्गे-नागहानी (अचानक मौत) और बाक़ी रह गई है। ७—पूरी नहीं होती। ८—उपाय। ९—निश्चित।

आगे आती थी हाले-दिल पै हँसी
अब किसी बात पर नहीं आती।
जानता हूँ सवाबे-ताअत-ओ-ज़ोहद[१]
पर तबीअत इधर नहीं आती।
है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ
वरना क्या बात कर नहीं[२] आती।
क्यो न चीखूँ कि यदि करते हैं
मेरी आवाज़ गर नहीं आती।[३]
दाग़े-दिल गर नज़र नहीं आता
बू भी ए चारा गर नही आती ?[४]
हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी
आप अपनी ख़बर नहीं आती।
मरते हैं आरज़ू में मरने की
मौत आती है पर नहीं आती।
काबे किस मुँह से जाओगे 'ग़ालिब'
शर्म तुमको मगर[५] नहीं आती।

:: ११७ ::

दिले-नादां तुझे हुआ क्या है
आख़िर इस दर्द की दवा क्या है ?

१—ईश्वर की आज्ञाओं और धर्म कर्म का पुण्य। २—कर नहीं आती अर्थात करना नहीं आती। ३—मैं इसलिये चीखकर फ़रियाद करता हूँ कि जब मैं चुप हो जाता हूँ तो वे चकित हो मुझे याद करने लगते है। ४—चारागार अर्थात चिकित्सक से कहते हैं कि मुझे अपने दिल का दाग़ नहीं नजर आता तो क्या मुझे हृदय के जलने से उत्पन्न होने वाली गंध भी नहीं आती। ५—मगर अर्थात शायद।

हम हैं मुश्ताक़[1] और वह बेज़ार[2]
या इलाही ये माजरा क्या है ?

मैं भी मुँह में ज़बान रखता हूँ
काश पूछो कि मुद्दआ[3] क्या है ?

जब कि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद
फिर ये हङ्गामा ए खुदा क्या है ?

ये परी चेहरा लोग कैसे हैं ?
ग़मज़-ओ-इशवा[4]-ओ-अदा क्या है ?
शिकने-ज़ुल्फ़े अम्बरीं[5] क्यों है ?
निगाहे-चश्मे-सुर्मा सा क्या है ?

सब्ज़ा ओ गुल कहाँ से आये हैं ?
अब्र क्या चीज़ है हवा क्या है ?

हमको उनसे वफ़ा की है उम्मीद
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है ?

हाँ भला कर तेरा भला होगा
और दरवेश[6] की सदा क्या है ?

:: ११८ ::

हुई गर मेरे मरने से तसल्ली न सही
इम्तहाँ और भी बाक़ी हो तो ये भी न सही।

ख़ारे-परस्ताँ ! ख़ुमे-मय मुँह से लगाए ही बनी
दिन गर हुआ बज़्म में साक़ी न सही।[7]

इच्छुक। २—विरक्त। ३—अभिप्राय। ४—नाज़ औ
-सुगंधित केशों के पेंच। ३—फ़कीर। ७—शराबियों से
साक़ी नहीं है तो आज शराब का मटका ही मुँह से

एक हङ्गामे पै मौक़ूफ़ है घर की रौनक़
नौहए ग़म ही सही नग़मए-शादी न सही ।[१]
न सताइश की तमन्ना न सिले की परवा
गर नहीं है मेरे अशआर मे मानी न सही ।[२]
इशरते-सोहबते-ख़ुबाँ ही ग़नीमत समझो
न हुई 'ग़ालिब' अगर उम्रे तबीई न सही ।[३]

:: ११६ ::

अजब निशात[४] से जल्लाद के चले है हम आगे
कि अपना सायए सर पाँव से है दो क़दम आगे ।
क़ज़ा ने था मुझे चाहा ख़रावे-बादए उलफ़त
फ़कत "ख़राब" लिखा, बस न चल सका क़लम आगे[५] ।

१—कोई न कोई हंगामा (चहल पहल) होना चाहिये चाहे वह शादी का हो या मातम का । दोनों मे लोग इकट्ठे होकर घर की रौनक बढ़ा देते है । २—ग़ालिब के समय मे उनकी शायरी को कुछ लोग अर्थ हीन और कठिन कहा करते थे, ऐसे लोगो को सम्बोधित कर वे कहते हैं कि मुझे न पुरस्कार की परवाह हैं न किसी बदले की इसलिये जिनको मेरे शेर में कोई अर्थ नही सूझता, न सूझे । ३—आनन्द की घड़ी जल्दी बीत जाती है इसलिये सुन्दरियों के साथ बीतने वाले कुछ क्षणों को ही बहुत जानो, यदि पूरी आयु (उम्रे-तबीई =प्राकृतिक आयु) न मिली तो उसका रंज न करो । ४—प्रसन्नता । ५—'क़ज़ा, शब्द का अर्थ है मृत्यु परन्तु यहाँ उस फ़रिश्ते के लिये प्रयुक्त हुआ है जो भाग्य लिखता है । इस शेर का मतलब है कि उसने मेरे भाग्य मे ख़रावे-बादए उलफ़त अर्थात शराब मे मस्त (ख़राब का अर्थ मस्त भी है) लिखना चाहा था परन्तु उसकी लेखनी 'ख़राब, लिखकर ही रह गई और इस प्रकार मैं मस्त न बन सका और भाग्य के लेखे के अनुसार ख़राब अर्थात बरबाद होकर ही रह गया ।

ग़मे ज़माना ने झाड़ी निशाते-इश्क़ की मस्ती
वगर न हम भी उठाते थे लज़्ज़ते-अलम आगे।[1]
ख़ुदा के वास्ते दाद इस जुनूने-शौक़ की देना
कि उसके दर पै पहुँचते हैं नामाबर से हम आगे।[2]
क़सम जनाज़ें पै आने की मेरे खाते हैं 'ग़ालिब'
हमेशा खाते थे जो मेरी जान की क़सम आगे।

:: १२० ::

शिकवे के नाम से बेमेह्र ख़फ़ा होता है
यह भी मत कह कि जो कहिये तो गिला होता है।[3]
पुर हूँ मैं शिकवे से[4] यूं राग से जैसे बाजा
एक ज़रा छेड़िये फिर देखिये क्या होता है।
गो समझता नहीं पर हुस्ने-तलाफ़ी[5] देखो
शिकवए-जोर से सर गर्मे जफ़ा होता है।

१—दुनिया के दुख ने प्रेम के सुख की मस्ती झाड़ दी अर्थात् सुख का नशा उतार दिया। नहीं तो आगे अर्थात् पहले हम प्रेम की वेदना से आनन्दित होते थे। २—जुनने शौक़ अर्थात् प्रेम में उतावली की दाद चाहते हैं क्योंकि इससे बढ़कर उतावली क्या होगी कि पत्र भेज कर प्रिय के घर पत्र वाहक से पहले पहुँच जाते है। ३—केवल शिकायत के नाम से ही वह बेमुरव्वत ख़फ़ा होने लगता है और कहता है कि यह भी न हो कि हम शिकायत के नाम से ख़फ़ा होते हैं क्योंकि यह भी एक शिकायत ही है। ४—पुर हूँ मैं शिक्वे से अर्थात् शिकायतों से भरा हूँ। ५—तलाफ़ी=पूर्ति। हुस्ने तलाफ़ी अर्थात् अच्छी पूर्ति। यद्यपि वह अभी इतना नादान है कि कुछ समझता नहीं परन्तु इस नादानी में भी जुल्म की शिकायत करने पर वह और अधिक जुल्म करके अपनी समझ से पिछले जुल्म की पूर्ति कर देता है। शेर व्यंगात्मक है।

क्यों न ठहरें-हदफ़े-नावके-बेदाद कि हम
आप उठा लाते हैं गर तीर ख़ता होता है।[1]

ख़ब था पहले से होते जो हम अपने बद ख़्वाह
कि भला चाहते और बुरा होता है।[2]

नाला जाता था परे अर्श से मेरा और अब
लब तक आता है जो ऐसा ही रसा होता है।[3]

रखियो 'ग़ालिब' मुझे इस तल्ख़-नवाई[4] से मआफ़
आज कुछ दर्द मेरे दिल मे सिवा होता है।

:: १२१ ::

हर एक बात पै कहते हो तुम कि "तू क्या है ?"
तुम्हीं कहो कि ये अन्दाज़े-गुफ्तगू[5] क्या है ?

न शोले में ये करशमा न बर्क़में[6] ये अदा
कोई बताओ कि वो शोख़ेतुन्दख़ू[7] क्या है ?

चिपक रहा है बदन पर लहू से पैराइन[8]
हमारी जेब को अब हाजते-रफ़ू[9] क्या है ?

जला है जिस्म जहाँ दिल भी 'जल गया होगा
कुरेदते हो जो अब राख जुस्तजू[10] क्या है ?

१—हदफ़े-नावके-बेदाद अर्थात् बेदाद करने के उद्देश्य से चलाए गए तीर का निशाना। तीर ख़ता होता है=तीर निशाने से चूकता है। २—बद ख़्वाह=बुरा चाहने वाला। ३—पहले मेरी फ़रियाद आकाश से भी ऊपर पहुँच जाती थी किन्तु अब (दुर्बलता के कारण) बहुत जोर लगाने पर होठों तक ही आ पाती है। रस होता है=पहुँच पाता है। ४—तल्ख़ नवाई=कटु बात कहना। सिवा=अधिक। ५—बात का" ढंग। ६—बिजली। ७—तेज़ मिज़ाज वाला। ८—कुर्ता। ९ रफ़ू की १०—खोज

रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ायल
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है ?
वो चीज़ जिसके लिये हमको हो वहिश्त आज़ीज़
सिवाय बादए-गुलफ़ाम-ओ-मुश्कबू क्या है ?[1]
पियूं शराब अगर खुम भी देख लूँ दो चार
ये शीशा-ओ-क़दह्-ओ-कूज़-ओ-सुबू क्या है ?[2]
रही न ताक़ते-गुफ़्तार[3] और अगर हो भी,
तो किस उमीद पै कहिये कि आरज़ू क्या है ?
हुआ है शह का मुसाहिब फिरे है इतराता
वगर न शह्र में 'ग़ालिब' की आवरू क्या[4] है ?

:: १२२ ::

मै उन्हें छोड़ूँ और कुछ न कहें
चल निकलते[5] जो मय पिये होते।
क़ह्र हो या बला हो, जो कुछ हो।
काश के तुम मेरे लिये होते।[6]
मेरी क़िस्मत में ग़म गर इतना था
दिल भी यारव ! कई दिए होते।

१—स्वर्ग हमें जिसके लिये प्रिय हो सकता है वह सिवाय
, गुलफ़ाम-ओ मुश्कबू' अर्थात् लाल रंग की सुगन्धित शराब के
्या हो सकती है। २—खुम=मटका। शीशा, क़दह, कूज़ा
ुबू ये सब शराब पीने के बर्तन हैं। ३—बोलने की शक्ति ४—
ाह के मुसाहिब बनने से जो सम्मान मिला है उसी पर इतराता
ा तो 'ग़ालिब' को कौन जानता है ५—चल निकलते अर्थात्
जाते, नाराज हो जाते। ६—काश मेरे भाग्य में तुम मेरे
लिख दिये गये होते, फिर तुम्हारा हर जुल्म, हर सितम मुझे
र होता।

आही जाता वो राह पर 'ग़ालिब'
कोई दिन और भी जिये होते।

:: १२३ ::

आ ! कि मेरी जान को क़रार नहीं है
ताक़ते-बेदादे-इन्तज़ार[१] नहीं है।
गिरिया[२] निकाले है तेरी बज्म से मुझको
हाय, कि रोने पै अख्तियार नहीं है।
क़त्ल का मेरे किया है अहद तो बारे[३]
वाय ! अगर अहद उस्तवार[४] नहीं है।
देते हैं जन्नत हयाते-दहर के बदले
नश्शा ब-अन्दाज़ए-खुमार नहीं है।[५]
तूने क़सम मैकशी[६] की खाई है 'ग़ालिब'
तेरी कसम का कुछ एतबार नही है।

:: १२४ ::

हुस्ने-मह गरचे ब-हंगामे-कमाल अच्छा है
उससे मेरा महे-खुरसीदे-जमाल अच्छा है।[७]
बोसा[८] देते नहीं और दिल पै है हर लहजा निगाह
जी में कहते हैं कि मुफ्त आय तो माल अच्छा है।

१—इन्तजार का कष्ट सहने की शक्ति नही है। २—रुदन। ३—प्रतिज्ञा। ४—दृढ। अपने क़त्ल होने की खुशी है, किन्तु यदि उसने अपनी प्रतिज्ञा न पूरी की तो यह दुख की बात होगी। ५—सांसारिक कष्टों के बदले मे स्वर्ग का पुरस्कार बहुत बड़ा नहीं कहा जा सकता। नशा जितना टूट चुका हो उसी के अनुसार शराब पीने से तसल्ली होती है। इस शेर मे जीवन को खुमार और स्वर्ग को नशे की उपमा दी गई है। ६—शराब पीने। ७—पहली पंक्ति में कहते हैं कि यद्यपि चाँद का सौन्दर्य उसके पूर्ण हो जाने पर अच्छा लगता है लेकिन उससे भी अच्छा मेरा प्रिय है। खुरशीदे जमाल=सौंदर्य का सूर्य ८ चुम्बन

और बाजार से ले आये अगर टूट गया
सागरे जम से मेरा जामे-सफाल अच्छा है।[1]
बे तलब दें तो मज़ा उसमें सिवा मिलता है
वह गदा,[2] जिसको न हो ख़ूए-सवाल;[3] अच्छा है।
उनके देखे से जो आ जाती है मुँह पर रौनक़
वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।
देखिये पाते हैं उश्शाक़ बुतों से क्या फ़ैज़[4]
एक बरह्मन ने कहा है कि ये साल अच्छा है।
हम सुख़न तेशे न फ़रहाद को शीरीं से किया
जिस तरह का भी किसी में हो कमाल अच्छा है।[5]
हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन
दिल के बहलाने को 'ग़ालिब' ये ख़याल अच्छा है।

:: १२५ ::

ग़ैर ले महफ़िल में बोसे जाम के
हमें रहें यों तशना-लब पैग़ाम के।[6]

१—सम्राट जमशेद के पास एक प्याला था जिसमें सारी दुनिया के दृश्य दिखाई देते थे। परन्तु 'गालिब' कहते हैं कि मेरा मिट्टी का प्याला (जामे सफ़ाल) उस प्याले से अच्छा है। इस शेर में सरल जीवन बिताने का उपदेश दिया गया है। २—भिखारी। ३—सवाल करने की आदत। ४—ब्राह्मण से मतलब ज्योतिषी है। ज्योतिषी ने बताया है कि दुनिया के लिये यह वर्ष अच्छा है। देखें इस वर्ष में प्रेमियों को रूप वालों से क्या लाभ होता है। ५—फ़रहाद ने तेशा (कुदाल) चलाने में दक्षता प्राप्त कर के शीरीं से बात करने का सम्मान प्राप्त कर लिया, इससे प्रकट होता है कि मेहनत मजदूरी और मामूली हैसियत से आदमी का मान घटता नहीं। शर्त यही है कि वह अपनी कला में दक्षता प्राप्त कर ले। ६—दूसरे तो तेरी महफ़िल में शराब भी पियें और हम सन्देश के भी प्यासे रहें।

ख़स्तगी का तुम से क्या शिकवा कि यह
हथकंडे है चर्ख़े-नीली-फ़ाम के।[1]

ख़त लिखेंगे गरचे मतलब कुछ न हो
हम तो आशिक़ है तुम्हारे नाम के।

रात पी ज़मज़म पै मय और सुब्ह्-दम
धोए धब्बे जामाए-अहराम के।[2]

दिल को आँखों ने फँसाया क्या मगर
ये भी हलक़े है तुम्हारे दाम के।[3]

इश्क़ ने 'ग़ालिब' निकम्मा कर दिया
वरना हम भी आदमी थे काम के।

:: १२६ ::

कब वो सुनता है कहानी मेरी
और फिर वह भी ज़बानी मेरी।

ख़ालिशे-ग़मज़ए-ख़ूरेज़[4] न पूछ
देख ख़ूँनाबा-फ़शानी[5] मेरी।

१—ख़स्तगी अर्थात् अपनी परेशानी की तुमसे क्या शिकायत करें। यह तो आस्मान के हथकडे हैं। तुम्हारा दोष नहीं। २—जम-ज़म काबे के एक कुएँ का नाम है। उसका जल बडा पवित्र माना जाता है और जामए अहराम उस कपड़े को कहते है जिसे पहन कर हज किया जाता है। कहते हैं रात जमजम पर बैठ कर शराब पी और सुबह को लोगों के डर के मारे जामे पर पड़े शराब के धब्बे धो डाले। ३—हमारी आँखों ने तुम्हारा रूप देख हृदय को फँसा दिया। शायद ये भो तुम्हारे जाल के फंदे है। 'मगर' शब्द यहाँ 'शायद' के अर्थ में आया है। ४—तेरी क़ातिल अदा की खटक। ५—आँख से खून बहाना

क्या बयाँ करके मेरा रोएँगे
मगर, आशुफ़्ता-बयानी[१] मेरी।
मुतक़ाबिल[२] है मुक़ाबिल[३] मेरा
रुक गया, देख रवानी मेरी।
कर दिया जोफ़ ने आजिज़ 'ग़ालिब'
नंगे-पीरी है जवानी मेरी।[४]

:: १२७ ::

जिस ज़ख़्म की हो सकती हो तदबीर रफ़ू की[५]
लिख दीजियो यारब! उसे क़िस्मत में अदू की।[६]
अच्छा है सर अंगुश्ते-हिनाई का तसव्वुर
दिल में नज़र आती तो है एक बूँद लहू की।[७]
क्यों डरते हो उश्शाक़ की बे हौसलगी से
याँ तो कोई सुनता नहीं फ़रियाद किसू की।[८]

१—मेरी परेशान बातें याद करके शायद रोएँ। २—मुकाबिला न करने वाला। ३—मुकाबिला करने वाला। अर्थात् मेरा प्रतिद्वन्दी आया तो था मेरा मुकाबिला करने किन्तु मेरी कविता का प्रवाह (रवानी) देख मुक़ाबिले से हट गया। ४—जोफ़ अर्थात् दुर्बलता ने इतना निर्बल बना दिया है कि मेरी जवानी को बुढ़ापे से भी शर्म आती है। ५—सिलने का उपाय। ६—दुश्मन। ७—सर अंगुश्ते-हिनाई का तसव्वुर अर्थात् मेंहदी लगी उँगली की पोर की कल्पना। मेंहदी लगने से उँगली का सिरा लाल होता है, इसलिये मन में उसकी कल्पना से रक्त की बूँद जैसी झलकती है। 'नज़र आती तो है' का अर्थ है कि आँखों से ख़ून के आँसू बहाते-बहाते दिल में ख़ून बिलकुल नहीं रह गया। ८—बे हौसलगी = अधीरता। कहते हैं आशिक़ों की अधीरता से व्यर्थ ही डरते हो। यहाँ कोई उनकी फ़रियाद थोड़े ही सुनता है।

:: १२८ ::

चाहिये अच्छों को जितना चाहिये
ये अगर चाहें तो फिर क्या चाहिये।
सोहबते-रिन्दाँ से वाजिब है हज़र
जाय-मय अपने को खींचा चाहिये।[1]
चाहने को तेरे क्या समझा था दिल
बारे अब उससे भी समझा चाहिये।[2]
चाक मत कर जेब बे ऐयामे-गुल
कुछ उधर का भी इशारा चाहिये।[3]
दोस्ती का पर्दा है बेगानगी
मुँह छिपाना हमसे छोड़ा चाहिये।
दुश्मनी ने मेरी खोया ग़ैर को
किस क़दर दुश्मन है देखा चाहिये।
मुनहसर[4] मरने पै हो जिसकी उमीद
ना उमीदी उसकी देखा चाहिये।
ग़ाफ़िल इन मह तलअतों[5] के वास्ते
चाहने वाला भी अच्छा चाहिये।
चाहते हैं ख़ूबरूयों[6] को 'असद'
आपकी सूरत तो देखा चाहिये।

१—सोहबते-रिन्दाँ अर्थात् शराबियों की संगत से बचना (हरज़) चाहिए। जहाँ शराब हो वहाँ से अपने को खींचना (कतराना) चाहिए। २—दिल तेरे प्रेम को खेल समझा था। अब उससे भी समझा चाहिए अर्थात् उसे इस खेल की सजा मिलनी चाहिए। ३—ऐय्यामे गुल अर्थात् फूलों की फ़सिल या वसन्त ऋतु। कहते हैं जब तक वसंत का संकेत न हो तब तक अपनी जेब मत चाक कर यानी पागल न बन। वसंत ऋतु पागल बन जाने का संकेत है। ४—निर्भर। ५—सुन्दर मुखड़े वालों। ६—सुन्दर मुखड़े वालों। ये शेर व्यंगात्मक है।

:: १२९ ::

अज़-मेहर-ताबा[1]-ज़र्रा दिलो-दिल है आईना
तूती[2] को शश-जहत[3] से मुक़ाबिल[4] है आईना।

:: १३० ::

सद जल्वा[5] रूबरू है, जो मिशगां उठाइये,
ताक़त कहाँ, कि दीद[6] का एहसां उठाइये।
है संग पर, बराते-मआशे-जुनूने-इश्क़[7]
यानी हनोज़ मिन्नते-तिफ़ला[8] उठाइये।
दीवार, बारे-मिन्नते-मज़दूर[9] से, है ख़म
ऐ ख़ानमां ख़राब[10], न एहसां उठाइये।
या मेरे ज़ख्मे-रश्क को रुस्वा[11] न कीजिए
या परद-ए-तबस्सुमे-पिन्हां[12] उठाइये।

:: १३१ ::

हासिल से हाथ धो बैठ, ऐ आरज़ू ख़िरामी[13]
दिल-जोशे-गिरया में है डूबी हुई असामी।[14]
उस शम्अ की तरह से, जिसको कोई बुझा दे
मैं भी जले हुवों में, हूँ दाग़े-नातमामी।

१—चमकता सूरज। २—छोटी जाति का तोता। ३—छः दिशाएँ, चारों ओर। ४—सामने। ५—सौ आकर्षणों के साथ। ६—देखना। ७—प्रेम के उन्माद का गुज़ारा। ८—बच्चों का एहसान। ९—मजदूर के एहसान का बोझ। १०—जिसका घर बरबाद हो चुका हो। ११—बदनाम। १२—छिपी मुस्कराहटों का परदा। १३—कामना। १४—वह किसान जिसकी खेती बह गई हो।

१३२

क्या तंग हम सितमज़दगां का जहान है
जिसमें कि एक बैज़-ए-मोर[1] आसमान है।

है कायनात को हरकत तेरे जौक़ से
परतौ[2] से आफ़ताब के, ज़र्रे में जान है।

हालां कि है यह सैलि-ए-खारा[3] से लालारंग
ग़ाफ़िल को मेरे शीशे[4] प मै का गुमान है।

की उसने गर्म सीन-ए-अहले-हवस[5] में जा
आवे न क्यों पसन्द, कि ठण्डा मकान है।

क्या खूब, तुमने ग़ैर को बोसा नहीं दिया
बस चुप रहो, हमारे भी मुँह में जुबान है।

बैठा है जो कि साय-ए-दीवारे-यार[6] में
फ़रमांखा-ए-किश्वरे-हिन्दोस्तान[7] है।

हस्ती का एतिबार भी ग़म ने मिटा दिया
किससे कहूँ कि दाग़े-जिगर का निशान है।

है बारे एतिमादे-वफ़ादारी इस कदर
'ग़ालिब', हम इसमें खुश हैं, कि नामेहरबान है।

१—चींटी का अंडा। २—प्रतिबिंब। ३—पत्थर की चोट। ४—दिल (गालिब ने उसे कोमलता के कारण शीशा कहा है) ५—लोभियों का वक्ष। ६—मित्र की दीवार की छाँह। ७—हिन्दुस्तान की सल्तनत का शासक।

:: १३३ ::

जो न नक़्दे-दाग़े-दिल[1] की करे शोला पास्बानी[2]
तो फ़सुर्दगी निहां है, ब कमीने-बेजुबानी।[3]

मुझे उससे क्या तवक़्क़ो, ब ज़माने-ए-जवानी[4]
कभी कोदकी[5] में जिसने, न सुनी मेरी कहानी।

यूं ही दुख किसी को देना नहीं खूब, वरना कहता
कि मेरे अदू को, यारब, मिले मेरी ज़िन्दगानी।

:: १३४ ::

पा ब दामन[6] हो रहा हूँ; बस कि मैं सहरा नवर्द[7]
ख़ारे-पा[8] हैं, जौहरे-आईन-ए-ज़ानू मुझे।

देखना हालत मेरे दिल की हम आग़ोशी के बाद
है निगाहे-आशना[9], तेरा सरे-हर मू[10], मुझे।

हूँ सरापा साज़े-आहगे-शिकायत[11], कुछ न पूछ
है यही बेहतर, कि लोगों में न छेड़े तू मुझे।

१—दिल के दाग़ की पूंजी। २—रक्षा। ३—ख़ामोशी की
मे, (यदि प्रेम की ज्वाला न हो तो दिल बुझ जाए)। ४—युवा-
में। ५—बचपन। ६—पाँव दामन में समेट कर बैठना, चलना
ा बंद करता। ७—जंगल-जंगल घूमने वाला। ८—पैर के
। ९—प्यार भरी निगाह। १०—बाल बाल की नोंक।
-शिकायत के स्वरों से भरा बाजा।

:: १३५ ::

सरगश्तगी[१] में, आलमे-हस्ती से यास है
तस्कीं को दे नवेद[२] कि मरने की आस है।

लेता नहीं मिरे दिले-आवारा की खबर
अब तक वो जानता है, कि मेरे ही पास है।

कीजे बयाँ सुरूरे-तबे-ग़म[३] कहाँ तलक
हर मू[४] मिरे, बदन प जुबाने-सिपास[५] है।

है वह ग़ुरूरे-हुस्न से बेगान-ए-वफ़ा[६]
हर चन्द उसके पास दिले-हक़ शनास है।

पी, जिस क़दर मिले, शबे-महताब[७] में शराब
इस बलग़मी[८] मिजाज को गर्मी ही रास है।

हर इक मकान को है मकीं से शरफ़, 'असद'
मजनूं जो मर गया है, तो जंगल उदास है।

:: १३६ ::

पीनस[९] में गुज़रते हैं जो कूचे से वो मेरे
कंधा भी कहारों को बदलने नहीं देते।

१—उन्माद की स्थिति, परेशानी। २—शुभ समाचार। ३—दुख के ताप का आनन्द। ४—रोआँ ५—तारीफ़ करनेवाली जीभ। ६—निर्मोही। ७—चाँदनी रात। ८—ठण्डे स्वभाव वाला, (चाँदनी रात ठण्डी होती है और शराब जो गर्म होती है उसका उपचार है।) ९—पालकी।

:: १३७ ::

है वस्ल हिज्र, आलमे-तमकीनो-ज़ब्त[1] में
माशूक़े-शोख़-ओ-आशिक़े-दीवाना[2] चाहिए।

उस लब से मिल ही जायगा बोसा कभी तो, हाँ
शौके - फ़ुज़ूल - ओ - जुरअते-रिन्दाना[3] चाहिए।

:: १३८ ::

सीमाब[4] पुश्त गर्मि-ए-आईना[5] दे है, हम
हैरां किये हुए हैं दिले-बेक़रार के।

आग़ोशे - गुल[6] कुशूदा[7] बराए विदाअ है
ऐ अन्दलीब[8] चल, कि चले दिन बहार के।

:: १३९ ::

तग़ाफ़ुल दोस्त हूँ, मेरा दिमाग़े-इज्ज़ आली[9] है
अगर पहलूतिही[10] कीजे, तो जा मेरी भी खाली है।

रहा आबाद आलम, अहले-हिम्मत के न होने से
भरे है जिस क़दर जामो-सुबू[11], मैख़ाना खाली है।

१—सतोष और सहन की दशा। २—शोख माशूक और ना आशिक। ३—शराबी का हौसला। ४—चाकू। ५—आईने पुश्त की गर्मी। ६—फूल की गोद। ७—उन्मुक्त। ८—बुलबुल। —मेरी विनम्रता का दिमाग बहुत ऊँचा हैं। १०—पहलू बचाना। —मधुपात्र, मधुकलश तथा मदिरालय।

:: १४० ::

फिर इस अन्दाज से बहार आई
कि हर मेहरो - माह[१] तमाशाई ।

देखो ऐ साकिनाने-खित्त-ए-खाक[२]
इसको कहते हैं आलम आराई[३] ।

कि जमीं हो गई है सर ता सर[४]
रूकशे - सतहे - चर्खे - मीनाई ।[५]

सब्जे को जब कहीं जगह न मिली
बन गया रू-ए-आब[६] पर काई ।

सब्ज़ - ओ - गुल के देखने के लिए
चश्मे-नरगिस[७] को दी है बीनाई ।

है हवा में शराब की तासीर
बादा नोशी[८] है बाद पैमाई ।[९]

क्यों न दुनिया को हो खुशी 'ग़ालिब'
शाहे-दीदार[१०] ने शिफ़ा[११] पाई ।

१—चाँद-सूरज । २—धरती के वासियो । ३—दुनिया का श्रृंगार । ४—एक सिरे से दूसरे सिरे तक । ५—पूरे आकाश के समान (आकाश तारों व चाँद से भरा है और धरती फूलों से) । ६—पानी की सतह । ७—नरगिस नामक फूल की आँख । ८—मदिरा पान । ९—हवा खाना । १०—धर्म प्राण, बादशाह । ११—सेहत ।

:: १४१ ::

नुक्ता-चीं[1] है ग़मे-दिल उसको सुनाये न बने
क्या बने बात जहाँ बात बनाए न बने।

मैं बुलाता तो हूँ उसको, मगर ए जज़्बए-दिल[2]!
उस पै बन जाय कुछ ऐसी कि बिन आए न बने।

खेल समझा है कहीं छोड़ न दे, भूल न जाय
काश यूँ भी हो कि बिन मेरे सताए न बने।

ग़ैर फिरता है लिये यूँ तेरे ख़त को कि अगर
कोई पूछे कि ये क्या है तो छिपाये न बने।

इस निज़ाकत का बुरा हो वो भले है तो क्या ?
हाथ आएँ तो उन्हें हाथ लगाए न बने।

कह सके कौन ? कि ये जलवागारी है किस की
पर्दा छोड़ा है वो उसने कि उठाये न बने।

मौत की राह न देखूँ ? कि बिन आए न रहे
तुमको चाहूँ कि न आओ तो बुलाये न बने।

बोझ वो सर से गिरा है कि उठाये न उठे
काम वो आन पड़ा है कि बनाये न बने।

इश्क़ पर ज़ोर नहीं, है ये वो आतिश 'ग़ालिब'
कि लगाए न लगे और बुझाये न बने।

—बात की जड़ खोदने वाला या बाल की खाल निकालने
२—हृदय का आकर्षण। वैसे तो उसे बुलाया ही करता हूँ,
ाज मेरे प्रेम के आकर्षण या प्रभाव से उस पर कुछ ऐसी बन
उसे आते ही बने।

१४२

वो आके ख़्वाब में तसकीन-इज़तराब तो दे
वले मुझे तपिशे-दिल[१] मजाले-ख़्वाब तो दे।
करे है क़त्ल लगावट में तेरा रो देना
तेरी तरह कोई तेग़े-निगाह को आब तो दे।[२]
दिखा के जुम्बिशे-लब[३] ही तमाम कर हमको
न दे जो बोसा मुँह से कहीं जवाब तो दे।
पिला दे ओक[४] से साक़ी जो हमसे नफ़रत है
पियाला गर नहीं देता न दे, शराब तो दे।
असद ख़ुशी से मेरे हाथ पाँव फूल गए
कहा जो उसने "ज़रा मेरे पाँव दाब तो दे"।

:: १४३ ::

फ़रियाद की कोई लय नहीं है
नाला पाबन्दे-नय नहीं है[५]

१—दिल की जलन। कहते हैं वह (प्रिय) स्वप्न में आकर मेरे व्याकुल हृदय को अपने दर्शनों द्वारा तस्कीन तो दे सकता है लेकिन मेरे हृदय में प्रेम की जो अग्नि भड़क रही है वह मुझे नींद ही नहीं आने देती और जब नींद ही न आये तो स्वप्न कैसे दिखे (अर्थात्) सारा दोष मेरे मन की जलन ही का है। २—तू जब लगावट में रो देता है तो तेरे आँसू तेरे नयन-कटारों को 'आब' दे देते हैं और उनकी तेज़ी मुझे क़त्ल कर डालती है। तलवार या ख़ंजर का पानी मुहावरा है, 'आब' का अर्थ भी पानी है। आँसू और ख़ंजर का पानी दोनों के लिये 'आब' का प्रयोग किस सुन्दरता से किया है। ३—होंठ हिलना। ४—चुल्लू। ५—दूसरी पंक्ति का अर्थ है—रुदन किसी बंसुरी का पाबंद नहीं है। मतलब यह कि फ़रियाद हो या रुदन, ये दिल से निकलना चाहिए तभी इनका प्रभाव होगा, इनके लिये किसी लय या साज़ की आवश्यकता नहीं।

क्यों बोते हैं बाग़बान तोंबे[1]
गर बाग़ गदाए-मय नहीं है।[2]
हय चन्द हर एक शै[3] में तू है
पर तुझसी तो कोई शै नहीं है।
हाँ खाइयो मत फ़रेबे-हस्ती
हर चन्द कहें कि है, नहीं है।[4]
क्यों रद्दे-क़दह करे है ज़ाहिद
मय है ये मगस की क़ै नहीं है।[5]

:: १४४ ::

दिया है दिल अगर उसको, बशर है क्या कहिये
हुआ रक़ीब, तो हो, नामाबर[6] है, क्या कहिये।
ये ज़िद कि आज न आए, और आए बिन न रहे
क़ज़ा[7] से शिकवा हमें किस क़दर है, क्या कहिये।

१—तोंबा भीख माँगने के काम आता है। गदाए-मय = शराब का भिखारी। २—वस्तु। ३—जीवन के धोखे में मत आना। लोग कितना ही कहें कि है, परन्तु तुम यही समझना कि नहीं है अर्थात् नश्वर है। ४—रद्दे-क़दह का अर्थ है क़दह (प्याले) को अस्वीकृत करना। ज़ाहिद से कहते हैं कि शराब पीने से क्यों इनकार करता है। यह मगस अर्थात् मक्खी की क़ै (मधु) नहीं है। स्वर्ग में मधु और दूध की नहरें बहती हैं। ज़ाहिद इतनी पूजा पाठ के बदले में स्वर्ग जाने की आशा रखता है और स्वर्ग में मधुपान की भी लालसा रखता होगा इसलिये मदिरा की बड़ाई करने के उद्देश्य से मधु को ऐसी घृणित उपमा दी है। ६—नामाबार (पत्र वाहक) उसको पत्र देने गया और उसका रूप देखकर उसे दिल दे बैठा। अब उसे क्या कहे, आखिर तो वह भी आदमी है और फिर बेचारा काम भी करता है। ७—मृत्यु।

ज़हे करिश्मा कि यूं दे रखा है हमको फ़रेब
कि बिन कहे भी उन्हें सब खबर है, क्या कहिये।[1]
समझ के करते हैं बाजार में वो पुरसिशे-हाल
कि ये कहे, कि सरे-रह गुज़र है, क्या कहिये।[2]
तुम्हें नहीं है सरे-रिश्तए-वफ़ा[3] का ख़याल
हमारे हाथ मे कुछ है, मगर है क्या ? कहिये।
कहा है किसने कि 'ग़ालिब' बुरा नही, लेकिन
सिवाय इसके कि आशुफ़्ता सर[4] है क्या कहिये।

:: १४५ ::

कभी नेकी भी उसके जी में गर आजाय है मुझसे
जफ़ाएं करके अपनी याद शर्मा जाय है मुझसे।[5]
खुदाया जज़्बए-दिल की, मगर तासीर उलटी है
कि जितना खींचता हूँ और खिंचता जाय है मुझसे।[6]
वो बदख़ू और मेरी दास्ताने-इश्क़ तूलानी
इबारत मुख़्तसर, क़ासिद भी घबरा जाय है मुझसे।[7]

१—उनके इशारो की करामात तो देखिये। हमें इस धोखे मे रख छोड़ा है कि हमारे बिना कहे भी उन्हें सब बातों की खबर है इसलिए उनसे कुछ कहते नही। २—बाजार में वे यह सोचकर हाल पूछते हैं कि यह राह चलते सबके सामने कुछ न कहेगा। ३—वफा की डोर का सिरा। ४—पागल। ५—इतने ज़ुल्म कर चुका है कि यदि कभी नेकी करने का ख्याल भी आता है तो पिछली जफ़ाएँ याद करके शर्मा जाता है और सोचता है कि अब क्या भलाई करे। ६—मेरे हृदय के आकर्षण का प्रभाव भी शायद उलटा है। मैं जितना ही उसे अपनी ओर खींचता हूँ उतना ही वह मुझसे दूर खिंचता जाता है। ७—वह (प्रिय) इतने बुरे स्वभाव का है कि मेरी बात ही नहीं सुनता और मेरी प्रेम कहानी बहुत लम्बी है। क़ासिद को सुनाऊँ तो वह भी घबरा जाता है, फिर कैसे अपनी बात उस तक पहुँचाऊँ। इबारत मख़्तसर = सारांश यह कि।

उधर वो बद गुमानी है इधर ये नतवान है
न पूछा जाय है उससे न बोला जाय है मुझसे।
सँभलने दे मुझे ए ना उमीदी क्या क़यामत है
कि दामाने-खयाले-यार छूटा जाय है मुझसे।
हुए हैं पाँव ही पहले नबर्दे-इश्क़[1] में जख्मी
न भागा जाय है मुझसे न ठहरा जाय है मुझसे।
क़यामत है कि होवे मुद्दई का हम सफ़र[2] 'गालिब'
वो काफ़िर जो खुदा को भी न सौंपा जाय है मुझसे।

:: १४६ ::

लाग़र[3] इतना हूँ कि गर तू बज़्म में जा दे[4] मुझे
मेरा ज़िम्मा देखकर गर कोई बतलादे मुझे।
क्या तअज्जुब है कि उसको देखकर आजाये रह्म
वाँ तलक कोई किसी हीले से पहुँचा दे मुझे।
याँ तलक मेरी गिरफ्तारी से वो खुश है कि मैं
जुल्फ़ गर बन जाऊँ तो शाने[5] में उलझा दे मुझे।

:: १४७ ::

बाज़ीचए-अतफ़ाल[6] है दुनिया मेरे आगे
होता है शब-ओ-रोज़ तमाशा मेरे आगे।

१—प्रेम-युद्ध। २—मुद्दई अर्थात् रक़ीब। कहते हैं कि वह
मन के साथ जा रहा है। कैसे विदा करूँ, वह तो, यदि खुदा
पना पड़े तब भी मुझे ईर्ष्या होगी। खुदा को सौंपने से यहाँ
है विदा के समय 'खुदा हाफ़िज' (ईश्वर रक्षक हो) कहने
—दुर्बल। ४—जगह दे। ५—कंघी। जुल्फ़ से मतलब है
केश। ६—बच्चों का खेल।

एक खेल है औरंगे-सुलैमां[१] मेरे नजदीक
एक बात है एजाज़े-मसीहा[२] मेरे आगे।

होता है निहाँ गर्द में सहरा मेरे होते
घिसता है जबीं खाक पै दरिया मेरे आगे।[३]

मत पूछ कि क्या हाल है मेरा तेरे पीछे
तू देख, कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे।[४]

फिर देखिये अन्दाज़े-गुल अफ़शानिये-गुफ्तार
रख दीजिये पैमानए-साहबा मेरे आगे।[५]

नफ़रत का गुमाँ गुज़रे है मैं रश्क से गुज़रा
क्योंकर कहूँ "लो नाम न उनका मेरे आगे।[६]"

ईमाँ मुझे रोके है तो खींचे है कुफ़्र
काबा मेरे पीछे है कलीसा[७] मेरे आगे।

१—सुलैमान (महान सम्राट) का राज्य। २—ईसा मसीह का चमत्कार। ३—प्रेम में मेरा पागलपन इतनी धूल उड़ा रहा है कि सहरा उसमें छिप जाता है और मैं ऐसा तूफान हूँ या मेरे आँसुओं से वह बाढ़ आती है कि नदी भी मेरी महानता स्वीकार कर मेरे सामने सिर झुकाती है। ४—तेरे वियोग में मेरा क्या हाल हो जाता है इसको मत पूछ। यह देख कि मेरे सामने तेरा क्या रंग हो जाता है, तू कितना परेशान हो जाता है। ५—अंदाज़े-गुल-अफ़शानिये गुफ्तार = बोलते समय मुँह से फूल झड़ने का अन्दाज। पैमानए-सहबा = शराब का प्याला। ६—मैं ईर्ष्यावश चाहता हूँ कि मेरे सामने कोई उसका नाम न ले किन्तु लोग समझने लगे है कि मैं उसके नाम से नफ़रत करता हूँ। इसी लिये मैंने ईर्ष्या छोड़ दी है और किसी के मुँह से उसका नाम सुन कुछ नही कहता। ७—गिरजा।

आशिक़ हूँ; पै माशूक़ फ़रेबी है मेरा काम
मजनूँ को बुरा कहती है लैला मेरे आगे।[1]

ख़ुश होते हैं, पर वस्ल में यूँ मर नहीं जाते
आई शबे-हिजराँ की तमन्ना मेरे आगे।[2]

है मौजज़न एक क़ुलज़ुमे-ख़ूँ काश यही हो
आता है अभी देखिए क्या-क्या मेरे आगे।[3]

गो हाथ को जुम्बिश नही आँखों मे तो दम है
रहने दो अभी साग़र-ओ-मीना मेरे आगे।[4]

हम पेशा-ओ-हम मशरब-ओ-हमराज़ है मेरा
'ग़ालिब' को बुरा क्यों, कहो अच्छा, मेरे आगे।[5]

१—मुझे माशूक़ को धोखा देना खूब आता है। मैं ऐसा धोखा देता हूँ कि लैला मजनूँ को छोड़ मेरी तारीफ करने लगती है और उसे बुरा कहने लगती है। २—प्रिय-मिलन से सभी को प्रसन्नता होती है किन्तु कोई हर्ष से मर नहीं जाता। परन्तु मुझे इतना हर्ष हुआ कि मैं मर ही गया। शायद यह मेरी उन तमन्नाओं का प्रभाव है जो मैं विरह की रातो मे मौत के लिये किया करता था। ३—मेरे ख़ून के आँसू रोने से एक रक्त सागर हिलोरें ले रहा है। काश ! मेरी मुसीबत यहीं ख़तम हो जाय, परन्तु आशा नहीं है, अभी और देखें क्या-क्या आगे आता है। ४—यह 'ग़ालिब' के सर्व-श्रेष्ठ शेरों में से एक शेर है। मरते समय का चित्र है। हाथ हिल नही सकते परन्तु आँखो में दम है। छू नही सकते पर देख सकते हैं इस लिये मेरी प्यारी सुराही और प्याले को सामने रहने दो। ५—दूसरी पंक्ति में 'अच्छा' शब्द इस अर्थ में आया है जैसे कहा जाय 'अच्छा यह बात मत करो' कहते हैं 'ग़ालिब' मेरे ही पेशे, मेरे ही धर्म का है और मेरा भेदी मित्र है।

:: १४८ ::

कहूँ जो हाल तो कहते हो "मुद्दआ[१] कहिये"
तुम्हीं कहो कि जो तुम यूँ कहो, तो क्या कहिये।

न कहियो तअन से फिर तुम कि "हम सितमगर हैं"
मुझे तो खू है, कि जो कुछ कहो, "बजा कहिये"।[२]

वो नेशतर सही पर दिल में जब उतर जाए
निगाहे-नाज़ को फिर क्यों न आशना कहिये।[३]

जो मुद्दई[४] बने उसके न मुद्दई बनिये
जो नासज़ा[५] कहे उसको न नासज़ा कहिये।

कहीं हक़ीक़ते-जाँ-काहिये-मरज[६] लिखिये
कहीं मुसीबते-नासाज़िये-दवा[७] कहिये।

कभी शिकायते-रंजे-गराँ-नशीं कीजे
कभी हिकायते-सब्रे-गुरेज़ पा कहिये।[८]

१—अभिप्राय। २—तअन अर्थात् व्यंग से भी अपने को सितमगर मत कहना, नहीं तो मेरी तो आदत है कि तुम जो कुछ कहोगे उसे कह दूँगा कि ठीक कहते हो। ३—नेशतर अर्थात् नश्तर। प्रिय की निगाह नश्तर सही पर जब हृदय में घर कर जाय तब उसे परिचित या मित्र ही कहना चाहिये और मित्र का स्थान हृदय में ही होता है। ४—दुश्मन। ५—नालायक़। ६—रोग के कष्ट का हाल। ७—दवा के ठीक न होने की मुसीबत या कठिनाई। ८—गराँनशीन = जो इस तरह बैठ जाय कि उसे उठाया न जा सके। हिकायते-सब्रे-गुरेज़ पा भागने वाले सब्र की कहानी।

रहे न जान तो क़ातिल को ख़ूँ बहा दीजे
कटे ज़बान तो खंजर को मरहबा कहिये ।[1]

नहीं निगार[2] को उलफ़त, न हो, निगार तो है
रवानि-ओ-राविश-ओ-मस्ति-ओ-अदा कहिये ।

सफ़ीना[3] जब कि किनारे पै आ लगा 'ग़ालिब'
ख़ुदा से क्या सतम-ओ-जौरे-नाख़ुदा[4] कहिये ।

:: १४९ ::

इब्ने-मरियम[5] हुआ करे कोई
मेरे दुख की दवा करे कोई ।

चाल जैसे कड़ी कमान का तीर
दिल में ऐसे के जा करे कोई[6]

बात पर वाँ ज़बान कटती है
वो कहें और सुना करे कोई ।

बक रहा हूँ जुनूँ में क्या-क्या कुछ
कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई ।

न सुनो, गर बुरा कहे कोई
न कहो, गर बुरा करे कोई ।

—प्रेम में इस प्रकार जीवन बिताना चाहिये कि जब क़त्ल
जाय तो कातिल को खून का बदला (जो क़ातिल देता है)
ज़बान कट जाय तो खंजर को शाबाश कहे। २—प्रिय।
प्रेम नहीं न सही, प्रिय तो है। उसी की चाल, ढाल, रंग
ती और अदा की बात करते रहो। ३—नाव। ४—
नाविक। ५—मरियम के बेटे ईसा मसीह। ६—इतने
के मन में किसी के लिये क्या जगह हो सकती है!

:: १४८ ::

कहूँ जो हाल तो कहते हो "मुद्दआ[1] कहिये"
तुम्ही कहो कि जो तुम यूँ कहो, तो क्या कहिये।

न कहियो तअन से फिर तुम कि "हम सितमगर हैं"
मुझे तो खू है, कि जो कुछ कहो, "बजा कहिये"।[2]

वो नेशतर सही पर दिल में जब उतर जाए
निगाहे-नाज़ को फिर क्यों न आशना कहिये।[3]

जो मुद्दई[4] बने उसके न मुद्दई बनिये
जो नासज़ा[5] कहे उसको न नासज़ा कहिये।

कहीं हक़ीक़ते-जाँ-काहिये-मरज़[6] लिखिये
कहीं मुसीबते-नासाज़िये-दवा[7] कहिये।

कभी शिकायते-रंजे-गराँ-नशीं कीजे
कभी हिकायते-सब्रे-गुरेज़ पा कहिये।[8]

१—अभिप्राय। २—तअन अर्थात् व्यंग से भी अपने को सितमगर मत कहना, नहीं तो मेरी तो आदत है कि तुम जो कुछ कहोगे उसे कह दूँगा कि ठीक कहते हो। ३—नेशतर अर्थात् नशतर। प्रिय की निगाह नशतर सही पर जब हृदय में घर कर जाय तब उसे परिचित या मित्र ही कहना चाहिये और मित्र का स्थान हृदय में ही होता है। ४—दुश्मन। ५—नालायक़। ६—रोग के कष्ट का हाल। ७—दवा के ठीक न होने की मुसीबत या कठिनाई। ८—गराँनशीन = जो इस तरह बैठ जाय कि उसे उठाया न जा सके। हिकायते-सब्रे-गुरेज़ पा भागने वाले सब्र की कहानी

रहे न जान तो क़ातिल को खूँ बहा दीजे
कटे ज़बान तो खंजर को मरहबा कहिये ।[1]

नहीं निगार[2] को उलफ़त, न हो, निगार तो है
रवानि-ओ-राविश-ओ-मस्ति-ओ-अदा कहिये ।

सफीना[3] जब कि किनारे पै आ लगा 'ग़ालिब'
खुदा से क्या सतम-ओ-जौरे-नाखुदा[4] कहिये ।

:: १४६ ::

इब्ने-मरियम[5] हुआ करे कोई
मेरे दुख की दवा करे कोई ।

चाल जैसे कड़ी कमान का तीर
दिल में ऐसे के जा करे कोई[6]

बात पर वाँ ज़बान कटती है
वो कहें और सुना करे कोई ।

बक रहा हूँ जुनूँ में क्या-क्या कुछ
कुछ न समझे खुदा करे कोई ।

न सुनो, गर बुरा कहे कोई
न कहो, गर बुरा करे कोई ।

१—प्रेम में इस प्रकार जीवन बिताना चाहिये कि जब क़त्ल या जाय तो क़ातिल को खून का बदला (जो क़ातिल देता है) जबान कट जाय तो खंजर को शाबाश कहे। २—प्रिय। ी प्रेम नहीं न सही, प्रिय तो है। उसी की चाल, ढाल, रंग मस्ती और अदा की बात करते रहो। ३—नाव। ४—, नाविक। ५—मरियम के बेटे ईसा मसीह। ६—इतने नी के मन में किसी के लिये क्या जगह हो सकती है!

कौन है जो नहीं है हाजत मन्द[१]
किसकी हालत रवा करे कोई ।

रोक लो गर ग़लत चले कोई
बख्श दो गर ख़ता करे कोई ।

क्या किया खिज्र ने सिकन्दर से
अब किसे रहनुमा करे कोई ।[२]

जब तवक़्क़ा[३] ही उठ गई 'ग़ालिब'
क्यों किसी का गिला करे कोई ।

:: १५० ::

हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पै दम निकले
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले ।

डरे क्यों मेरा क़ातिल क्या रहेगा उसकी गर्दन पर
वो ख़ूँ जो चश्मे-तर से उम्र भर यूँ दम-ब-दम निकले ।[४]

निकलना खुल्द से आदम का सुनते आए थे लेकिन[५]
बहुत बे आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले ।

१—जरूरतमन्द । २—खिज्र सिकन्दर को आबे-हयात या अमृत के स्रोत पर ले गये । स्वयं अमृत पी लिया और सिकन्दर को उन लोगों के सामने ले गये जिन्होंने अमृत पी लिया था और बुढ़ापे तथा दुर्बलता के कारण जिनका बुरा हाल था । सिकन्दर ने उनकी दशा देख अमृतपान से इनकार कर दिया । इस शेर में इसी कहानी की ओर संकेत कर कवि कहता है कि जब खिज्र जैसे महापुरुष की रहनुमाई से सिकन्दर को कुछ न मिला तो अब किस पर भरोसा किया जाय । ३—आशा । ४—कातिल गला न काटेगा तब भी मेरा खून आँखों से होकर बह जायगा । ५—आदम को खुदा ने स्वर्ग से निकाल दिया था क्योंकि उन्होंने निषिद्ध फल खा लिया था

भरम खुल जाए ज़ालिम तेरे क़ामत की दराज़ी[1] का
अगर इस तुर्रए-पुर पेच-ओ-ख़म का पेच-ओ-ख़म निकले

हुई जिनसे तवक़्क़ा ख़स्तगी की दाद पाने की
वो हमसे भी जियादा ख़स्तए-तेग़े-सितम-निकले ।[2]

मुहब्बत में नहीं है फ़र्क़ जीने और मरने का
उसी को देखकर जीते है जिस काफ़िर पै दम निकले ।

खुदा के वास्ते पर्दा न काबे का उठा वाइज
कहीं ऐसा न हो याँ भी वही काफ़िर सनम निकले ।[3]

कहाँ मयखाने का दरवाजा 'ग़ालिब' और कहाँ वाइज
पर इतना जानते है कल वो जाता था कि हम निकले ।

:: १५१ ::

नाकरदा[4] गुनाहों की भी हसरत को मिले दाद
यारब अगर इन करदा गुनाहों की सजा है ।

१—तेरे कद को लोग लम्बा कहते हैं, लेकिन यदि तेरी जुल्फों . पेच खुल जाय तो वह तुझसे भी लम्बी निकलेगी और तेरे क़द से म्बन्ध में जो भ्रम फैला है वह दूर हो जायगा । २—जिनसे आशा ी कि मेरा दुख दर्द सुनकर मुझे ढाढस देंगे उनको जाँचा तो हमसे ी ज्यादा दुखी और समय के हाथों सताए निकले । ३—ए वाइज ! ाबे की इतनी बड़ाई न कर और हमारा मुँह न खुलवा, नही तो हम से भी मन्दिर सिद्ध कर देंगे । काबा पहले एक मन्दिर था भी । —न किये हुए । जो गुनाह न कर सके उनकी अभिलाषा मन में ही । यदि किये हुए गुनाहों की सज़ा मिल रही है तो उन गुनाहों ी हसरत रखने का इनाम भी मिलना चहिये जो नही कर सका ।

:: १५२ ::

क्या फ़र्ज़ है कि सबको मिले एक सा जवाब
आओ न हम भी सैर करें कोहे-तूर की।[1]

:: १५३ ::

* होगा कोई ऐसा भी कि 'ग़ालिब' को न जाने
शायर तो वो अच्छा है पै बदनाम बहुत है।

:: १५४ ::

करता हूँ जमअ फिर जिगरें-लख़्त लख़्त को
मुद्दत हुई है दावते-मिजगाँ किये हुए।[2]

जी ढूँढ़ता है फिर वही फ़ुरसत के रात दिन
बैठे रहें तसव्वुरे-जानाँ किये हुए।

:: १५५ ::

गदा समझ के वो चुप था मेरी जो शामत आई
उठा और उठके क़दम मैंने पासबाँ के लिये।

१—मूसा तूर पहाड़ पर ईश्वर से बात करने गए थे किन्तु एक झलक देख कर ही मूर्च्छित हो गए थे। चलो हम भी तूर पर चलें, शायद हमें ईश्वर के दर्शन ही हो जाएँ। २—अब जिगर के टुकड़ों को फिर इकट्ठा कर रहा हूँ। क्योंकि तेरी पलकों (मिजगाँ) के तीरों ने एक बार पहले मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे

क़सीदा

*हाँ महे-नौ[1] सुनें हम उसका नाम
जिसको तू झुक के कर रहा है सलाम।

दो दिन आया है तू नजर दमे-सुब्ह
यही अन्दाज और यही अन्दाम।[2]

बारे दो दिन कहाँ रहा ग़ायब
बन्दा आजिज है गर्दिशे-ऐयाम।[3]

उड़ के जाता कहाँ कि तारों का
आस्माँ ने बिछा रखा था दाम।[4]

मरहबा ए सुरूरे-ख़ास ख़वास[5]
अन्नदा ए निशाते-आमे-अवाम।

उज्र में तीन दिन न आने के
लेके आया है ईद का पैग़ाम।[6]

कसीदा बहादुरशाह की शान में लिखा गया है।
या चाँद, ईद का चाँद। २—चन्द्रमा अन्तिम तिथियों
ोर में बिल्कुल नये चाँद की भाँति दिखता है। ३—दो
नहीं निकलता। अन्तिम पंक्ति में चाँद कवि को उत्तर
। काल-चक्र के कारण न उदय हो सका। बन्दा आजिज
विवश था। ४—जाल। ५, ६—'मरहबा' और
ों का अर्थ है 'धन्य हो' कहते हैं, हे विशिष्ट जनों के
और हे साधारण जनों की खुशी, तू धन्य हो क्योंकि तू
दनों की अनुपस्थिति के आरोप से बचने के लिये ईद का
उदय हुआ है।

उसको भूला न चाहिये कहना
सुब्ह जो जाय और आये शाम ।[१]

एक मैं क्या कि सबने जान लिया
तेरा आग़ाज़ और तेरा अंजाम ।[२]

राजे-दिल मुझसे क्यों छिपाता है
मुझको समझा है क्या कहीं नम्माम ।[३]

जानता हूँ कि आज दुनिया में
एक ही है उमीद-गाहे-अनाम ।[४]

मैंने माना कि तू है हलक़ा बगोश
'ग़ालिब' उसका मगर नहीं है ग़ुलाम?[५]

जानता हूँ कि जानता है तू
तब कहा है ब-तर्जे-इस्तिफ़हाम ।[६]

१—दो दिन चाँद सुबह को भी नहीं निकलता और तीसरे दिन शाम को उदय होता है इस कारण 'गालिब' ने उर्दू के एक पूरे मुहाविरे को उस पर लागू किया है कि सुबह का भूला यदि शाम को आजाय तो उसे भूला नहीं कहना चाहिए । २—अर्थात् तेरे आरम्भ और अन्त को सब जान गये कि तू जैसा पहले निकलता है, पूर्ण चन्द्र बन जाने के बाद भी आखिर में तेरा रूप वही पहला सा हो जाता है । —नम्माम अर्थात् चुग़ली खाने वाला । ४—अनाम अर्थात् उन साधारण की आशाओं का एक ही केन्द्र है । यहाँ मतलब है बादशाह बहादुरशाह से । ५—तू जिसका ग़ुलाम है क्या गालिब उसका ग़ुलाम नहीं ? ६—तू यह बात जानता है इसी कारण मैंने प्रश्न के रूप में कहा है ।

मेह्रे-ताबाँ को तो हो ए माह
क़ुर्बे-हर रोजा बर सबीले-दवाम ।[1]

तुझ को क्या पाया रू-शनासी का
जुज़ ब तक़रीबे-ईदे-माहे सयाम ।[2]

जानता हूँ कि उसके फ़ैज से तू
फिर बना चाहता है माहे तमाम ।[3]

माह बन, माहताब बन मैं कौन
तुझको क्या बाँट देगा त इनआम ।[4]

मेरा अपना जुदा मआमला है
और के लेन देन से क्या काम ।

है मुझे आरज़ूए-बख़शिशे-ख़ास
गर तुझे है उमीदे-रहमते-आम ।[5]

१, २—मेह्रे-ताबाँ अर्थात् सूर्य को प्रति दिन इस दरबार तक पहुँचने का गर्व प्राप्त हो तो हो, ('है' इसलिये नहीं कहा कि बदली में वह भी नहीं निकलता) परन्तु तुझे तो माहे-सयाम (रमजान मास) बाद पड़ने वाली ईद के अतिरिक्त और किसी दिन यह सम्मान नहीं प्राप्त होता कि बादशाह के दर्शन कर सके । ३—मुझे मालूम है कि बादशाह के फैज (कृपा) से तू फिर पूर्ण चन्द्र बन जायगा । ४—तू चन्द्र बन चाहे पूर्ण चन्द्र; मैं कौन बोलने वाला क्योंकि मुझे तो तू कुछ इनाम दे नहीं देगा । ५—अपनी महत्ता जताने के लिये अपनी बखशिश की आरजू को खास' कहते हैं ।

जो कि बख्शेगा तुझको फ़र्रे-फ़रोग़
क्या न देगा मुझे मए-गुलफ़ाम ।[१]

जब कि चौदह मनाजिले-फ़लकी
कर चुकी क़तअ तेरी तेजिये-गाम ।[२]

तेरे परतब से हों फ़रोग़ पिज़ीर
कू-ओ-मुश्कू-ओ-सेहन-ओ-मंजर-ओ-बाम ।[३]

देखना मेरे हाथ में लबरेज
अपनी सूरत का एक बिलूरीं जाम ।[४]

फिर जल की रविश पै चल निकला
तौसने-तबअ चाहता था लगाम ।[५]

जह्रेग़म कर चुका था मेरा काम
तुझको किसने कहा कि हो बदनाम ।[६]

१—हे चाँद, जो विधाता तुझे प्रकाश प्रदान करेगा, क्या वह मुझे लाल रंग की शराब न देगा। यह भी मतलब है कि तेरी चाँदनी मे मुझे शराब मिलेगी तो मुझे दोहरा आनन्द आयेगा, मैं तुझे मिले इनाम अर्थात् चाँदनी में हिस्सा बँटा लूगा। २—चौदह मनाजिले-फ़लकी अर्थात् आकाश की वे चौदह मंजिलें जिन्हें तीव्र गति से तय करके तू चौदहवी का (पूर्ण) चन्द्र बना। ३—उस समय जब तेरी चाँदनी हर कूचा, हर महल, हर दृश्य और हर कोठे पर पड़ेगी। ४—तू देखना कि मेरे हाथ में तेरी ही जैसी शक्ल का एक बिल्लूरी जाम होगा। ५—शराब और प्याले की बात होने पर मेरे विचारों का घोड़ा फिर ग़ज़ल की राह पर दौड़ पड़ा मानो वह इशारा ही चाहता था। यहाँ से क़सीदा ग़जल रूप ले लेता है इसीलिये फिर दो मतले कहे गये हैं। ये मतले ग़जल या क़सीदे के शुरू में ही आते हैं। मतला उस शेर को कहते हैं जिसके दोनों चरण तुकान्त हों।

मय है फिर क्यों न मैं पिये जाऊँ
ग़म से जब हो गई ज़ीस्त हराम ।[1]

बोसा कैसा ? यही ग़नीमत है
कि न समझें वो लज़्ज़ते-दुशनाम ।[2]

काबे में जा बजायँगे नाक़ूस
अब तो बाँधा है दैर में अहराम ![3]

इस क़दह् का है दौर मुझको नकद
चर्ख़ ने ली है जिससे गर्दिश वाम ।[4]

बोसा देने में उनको है इनकार
दिल के लेने में जिनको था इबराम ।[5]

१—ज़ीस्त हराम हो गई अर्थात् जीवन दूभर हो गया । २—लज़्ज़ते-दुशनाम यानी गाली का स्वाद । यदि प्रिय जान गया कि उसकी गालियों में भी मुझे मज़ा मिलता है तो वह कहीं गाली देना भी न छोड़ दे, बोसे या चुम्बन की तो बात ही दूर रही । ३—मंदिर (दैर) में नाक़ूस (शंख) बजाया जाता है और काबे मे अहराम (हज के समय पहना जाने वाला बे सिला कपड़ा) पहना जाता है पर हम तो प्रेम के मतवाले हैं । हम न काबे को मानते हैं न मंदिर को । आज यदि अहराम बाँध कर मंदिर में आ गये तो कल काबे में जाकर शंख फूंक आयेंगे । ४—क़दह्=प्याला, चर्ख़= आकाश, वाम=क़र्ज़ । यानी मैं वह ज्ञान का प्याला पी रहा हूँ जिससे आकाश ने गर्दिश उधार ली है, या मैं ज्ञान की वह मदिरा पी रहा हूँ जिससे मस्त होकर आकाश नाच रहा है । ५—इबराम= ज़िद, हठ ।

छोड़ता हूँ कि उनको ग़ुस्सा आय
क्यों रखूँ वरना ग़ालिब अपना नाम ।[1]

क़ह चुका मैं तो सब कुछ अब तू कह
ए परी चेहरा पैके-तेज़े-ख़राम ।[2]

कौन है जिसके दर पै नासिया सा
हैं मह-ओ-मेह्र ज़हरा-ओ-बहराम ।[3]

तू नहीं जानता तो मुझसे सुन
नामे-शाहिन्शहे-बलन्द मक़ाम ।[4]

क़िबलए-चश्म-ओ-दिल बहादुर शाह
मज़हरे-ज़ुल जलाल वल इकराम ![5]

१—ग़ालिब के माने हैं विजयी । कहते है मैने अपना नाम गालिब इसलिये रख लिया है कि वह अपने को मग़लूब (पराजित) समझें । इस छेड़ से ग़ुस्से में आकर मुझ पर बिगड़ें और मेरी ओर उनका ध्यान रहे । २—चाँद को तीव्रगामी सुन्दर संदेशवाहक कह कर पूछते हैं कि मैं तो जो कहना था सब कह चुका, अब तू भी कुछ कह । ३—नासिया सा=सिजदा करने वाला । कहते हैं कि वह कौन है जिसके द्वार पर चाँद सूरज और ज़हरा व बहराम (नक्षत्रों के अरबी नाम) सिर झुकाते हैं । ४, ५—मुझसे सुन कि उसका नाम शहिन्शाह बहादुर शाह है और वह आँखों और दिल का क़िबला (पूज्य स्थान) है और बड़ी शान शौकत वाला है ।

शहसवारे - तरीक़ए - इन्साफ़
नौबहारे - हदीक़ए - इस्लाम ।[1]

जिसका हर फ़ेल सूरते एजाज़
जिसका हर क़ौल मनाये-इलहाम ।[2]

बज़्म में मेज़बाने-कैसर-ओ-जम
रज़्म में ऊस्तादे-रुस्तम-ओ साम ।[3]

ए तेरा लुत्फ़ जिन्दगी अफ़ज़ा
ए तेरा अह्द फ़र्रुख़ी फ़रजाम ।[4]

चश्मे-बद दूर खुसरुआना शकोह
लौहश अल्लाह आरिफ़ाना कलाम ।[5]

जाँ निसारों में तेरे क़ैसर-ओज जम
जुरआ ख्वारों में तेरे मुरशिदे-जाम ।[6]

१—हदीक़ए-इस्लाम = इस्लाम का बाग़। २—जिसका हर कार्य चमत्कार रूप है और जिसकी हर बात अपनी सच्चाई के कारण ईश्वरीय बात लगती है। ३—जो महफ़िल में क़ैहर (रूम का सम्राट) और सम्राट जमशेद का अतिथेय बनता है और रणक्षेत्र में रुस्तम और साम (रुस्तम का दादा) का उस्ताद है। ४—अब बादशाह को सम्बोधित कर उसकी तारीफ़ कहते हैं। कहते हैं कि तेरी कृपा जीवनदायिनी है और तेरा राज काल शुभ परिणाम वाला है। ५—तेरी शाही शान-शौकत को बुरी नजर न लगे, तेरी ज्ञान पूर्ण बातों का क्या कहना। ६—जुरआ ख्वार = पीने वाले। मुरशिदे-जाम = जमशेद।

वारिसे-मुल्क जानते हैं तुझे
एरज-ओ-तूरओ-ख़ुसरु-ओ-बहराम।[1]

ज़ोरे-बाज़ू में जानते हैं तुझे
गेव-ओ-गोदर्ज-ओ-बीज़न-ओ-रहहाम।[2]

मरहबा मूशिगाफ़िये-नावक
आफ़रीं आबदारिये समसाह।[3]

तीर को तेरे तीरे-ग़ैर हदफ़
तेग़ की तेरी तेग़े-ख़स्मे नायम।[4]

रअद का कर रही है क्या दम बन्द
बर्क़ को दे रहा है क्या इल्ज़ाम।[5]

तेरे फ़ीले-गराँ जसद की सदा
तेरे रख्शे-सुबुक अनाँ का ख़राम।[6]

१—एरज, तूर ख़ुसरु और बहराम ईरान के क्यानी बादशाहों के नाम हैं। २—गेव, गोदर्ज, बीजन और रहहाम ईरान के प्रसिद्ध पहलवानों के नाम हैं जिनका वर्णन फ़िरदौसी ने अपने महाकाव्य 'शाहनामा' में किया है। ३—तेरा तीर बाल को भी भेद डालता है और तेरी तलवार की आबदारी भी धन्य है। ४—तेरा तीर दूसरे के तीर को निशाना बना देता है और तेरी तलवार दुश्मन की तलवार में ऐसे घुस जाती है जैसे तेरी म्यान में। ५, ६—रअद अर्थात् बिजली। तेरी आवाज विशालकाय हाथी की चिंघाड़ के समान है जो बादल की गरज को भी मात करती है और तेरे तीव्रगामी घोड़े की चाल बिजली को भी मंथर गति से चलने का इलज़ाम देती है।

फ़श्न-सूरत गरी में तेरा गुर्ज़
गर न रखता हो दस्तगाहे-तमाम ।[1]

उसके मज़रूब के सर-ओ-तन से
क्यों नुमायाँ हो सूरते इदग़ाम ।[2]

जब अजल में रक़म पिज़ीर हुए
सफ़ाहाए-लयालियो-ऐयाम ।[3]

और इन औराक़ में ब-किल्के-क़ज़ा
मुजमला मुन्दरज हुए अहकाम ।[4]

लिख दिया शाहिदों को आशिक़-कुश
लिख दिया आशिक़ों को दुश्मने-काम ।[5]

हुक्मे-नातिक़ लिखा गया कि लिखें
खाल को दाना और जुल्फ़ को दाम ।[6]

आतिश-ओ-अब-ओ-बाद-ओ-खाक ने ली
वजअ सोजो-ओनम-ओ-रम-ओ-आराम ।[7]

१, २—तेरा गुर्ज़ (गदा) यदि चित्रकारी में प्रवीण न होता तो उसकी मार से सिर तन में कैसे धंस जाता और कैसे एक नई सूरत बन जाती । इदग़ाम = विलीनी करण । ३, ४, ५, ६, ७—ये पांच शेर भी क्रमबद्ध हैं । कहते है जब सृष्टि की रचना के समय दिन और रात के पृष्ठ लिखे गये और उनसे संक्षेप में सब हुक्म दर्ज किये गये तो रूप वालों को प्रेमियों का क़ातिल लिख दिया गया और प्रेमियों को उनके दुश्मनों की इच्छानुसार परेशान और निराश । हुक्म दिया गया कि आकाश की तीव्रगामी गुम्बज लिखो, तिल को दाना और जुल्फ को दाम अर्थात जाल लिखो । इसी हुक्म के अनुसार आग ने जलन, पानी ने नमी, हवा ने इधर-उधर भागने और मिट्टी ने स्थिर रहने के गुण ग्रहण कर लिये ।

मेह्‌रे-रख़्शाँ का नाद ख़ुसरुए-रोज
माहे-ताबाँ का इस्म शहनए-शाम ।[1]

तेरी तौक़ीए-सलतनत को भी
दी बदस्तूर सूरते-इरक़ाम ।[3]

कातिबे-हुक्म ने बमोजिबे-हुक्म
इस रक़म को दिया तराज-दवाम ।[2]

है अजल से रवानियें-आग़ाज
हो अबद तक रसाइये-अंजाम ।[4]

●

१, २, ३—इसी प्रकार सूर्य का नाम दिन का बादशाह रखा गया और चाँद का नाम शाम का कोतवाल पड़ गया। इसी प्रकार उन पृष्ठों में तेरे नाम राज करना लिखा गया और विधाता के आदेशानुसार लिखने वाले ने तेरे नाम के राज-काल को चिरस्थायी लिख दिया। ४—मानो तेरा राज काल आदि काल से शुरू होता है और ईश्वर से प्रार्थना है कि वह अनन्त काल तक बना रहे

सेहरा

ुश हो ऐ बख़्त, कि है आज तेरे सर सेहरा
ाँध शहज़ादे-जवां बख़्त के सर पर, सेहरा।

क्या ही इस चाँद से मुखड़े प भला लगता है
है, तुरे हुस्ने-दिल अफ़रोज़ का ज़ेवर, सेहरा।

सर प चढ़ना तुझे फबता है, पर ऐ तर्फ़े-कुलाह[1]
मुझको डर है, कि न छिने, तेरा लम्बर[2] सेहरा।

नाव भर कर ही पिरोये गये होंगे मोती
वरना, क्यों लाये हैं किश्ती में लगाकर, सेहरा

सात दरिया के फ़राहम[3] किये होंगे मोती
तब बना होगा, इस अन्दाज़ का गज़ भर, सेहरा।

रुख़ प दूल्हा के, जो गर्मी से पसीना टपका
है रगे-अब्रे-गुहरबार[4], सरासर सेहरा।

यह भी इक बेअदबी थी, कि क़बा से बढ़ जाये
रह गया आन के दामन की बराबर, सेहरा।

जी में इतरायें न मोती, कि हमीं हैं इक चीज
चाहिए फूलों का भी एक, मुकर्रर सेहरा।

जबकि अपने में समायें न खुशी के मारे
गूँधे फूलों का, भला फिर कोई क्योंकर सेहरा।

१—टोपी का कोना। २—नम्बर। ३—उपलब्धि।
—मोती बरसाने वाले बादलों की रगें।

रुखे-रौशन को दमक, गौहरे-ग़लतां[1] की चमक
क्यों न दिखलाये फ़रोगे-महो-अख़्तर[2], सेहरा।

तार रेशम का नहीं है, यह रंग-अब्रे-वहार
लायेगा ताबे-गरांबारि-ए-गौहर[3] सेहरा।

हम सुख़न फ़हम[4] हैं 'गालिब' के तरफदार नहीं
देखें कहदे कोई, इस सेहरे से बढ़ कर सेहरा।

*

है चार शम्बा[5] आखिरे-माहे-सफ़र[6] चलो
रख दे चमन मे भर के, मै-ए-मुश्कवू[7] की नान्द।

जो आए जाम भर के पिये, और हो के मस्त
सब्ज़े को रौंदता फिरे, फूलों को जाये फान्द।

वटते है सोने रूपे के छल्ले हुज़ूर में
है जिनके आगे-सीमो-ज़रे-मेहरो-माह[8] मान्द।

यूँ समझिए, कि बीच के खाली किये हुए
लाखों ही आफ़ताव हैं और बेशुमार चान्द।

'ग़ालिब' यह क्या बयाँ है, बजुज़ मदहे-बादशाह[9]
भाती नहीं है अब मुझे, कोई नविश्ता-ख्वान्द[10]।

१—गोल मोती। २—चाँद व तारों का प्रकाश। ३—मोतियों की वेशकीमती सह लेगा। ४—काव्य-पारखी। ५—बुधवार। ६—सफर (मास) का अंत। ७—कस्तूरी की सुगन्धवाली शराब। ८—सूरज व चाँद का चाँदी-सोना (चमक-दमक)। ९—सम्राट का गुण गान। १०—लिखना-पढ़ना।

फुटकर रचनाएँ

न पूछ उसकी हक़ीक़त, हुजूरे—वाला ने
मुझे जो भेजी है, बेसन की रौग़नी रोटी,
न खाते गेहूँ, निकलते न खुल्द[1] से, बाहर
जो खाते हज़रते—आदम, यह बेसनी रोटी।

※

इफ़्तारे-सोम[2] की कुछ अगर, दस्तगाह[3] हो
उस शख्स को जरूर है रोज़ा रखा करे,
जिस पास रोज़ा खोल के खाने को कुछ न हो
रोज़ा अगर न खाये तो नाचार क्या करे?

※

सहल था मुस्हिल,[4], वले यह सख्त मुश्किल आ पड़ी
मुझ प क्या गुज़रेगी, इतने रोज हाज़िर बिन हुए,
तीन दिन मुस्हिल से पहले तीन दिन मुस्हिल के बाद
तीन मुस्हिल तीन तबरीदें,[5] ये सब के दिन हुए?

※

गये, वो दिन, कि नादानिस्ता[6] ग़ैरों की वफ़ादारी
किया करते थे तुम तक़रीर, हम खामोश रहते थे,
बस, अब बिगड़े प क्या शर्मिन्दगी, जाने दो मिल जाओ
क़सम लो हमसे, गर यह भी कहें, क्यों हम न कहते थे।

१—आराधनागृह। २—रोज़ा खोलना। ३—शक्ति, सामर्थ्य।
४—जुल्लाब। ५—ठण्डाई। ६—बिना जाने बूझे।

*

कलकत्ते का जो ज़िक्र किया तूने हम-नशीं
इक तीर मेरे सीने में मारा, कि हाय-हाय
वो सब्ज़ा जा रहा-ए-मुतर्रा[१] कि है ग़ज़ब
वो नाज़नीं[२] बुताने-ख़ुद आरा[३] कि हाय-हाय
सब्र-आज़मां वो उनकी निगाहें कि हफ़[४] नज़र
ताक़त रुबा वो उनका इशारा कि हाय-हाय
वो मेवाहा-ए-ताज़-ओ-शीरीं[५] कि वाह-वाह
वो बादाहा-ए-नाबे-गवारा,[६] कि हाय-हाय

*

आतशबाज़ी है जैसे शग़ले- अत्फ़ाल[७]
है सोज़े-जिगर का भी इसी तौर का हाल,
था मूजिदे-इश्क़[८] भी क़यामत कोई
लड़कों के लिए गया है क्या खेल निकाल।

*

है ख़ल्क़े-हसद क़ुमाश[९] लड़ने के लिए
वहशद कदा-ए-तलाश[१०] लड़ने के लिए,
यानी हर बार सूरते-कागज-बार[११]
मिलते हैं ये बदमाश लड़ने के लिए।

१—हरे-भरे बाग। २—सुन्दरी, रूपसी। ३—अपने को सजाने वाली मूर्ति। ४—बुरी नजर से बचें। ५—मीठे व ताजे मेवे। ६—शुद्ध तथा सुखद मदिरा। ७—बच्चों का खेल। ८—प्रेम का आविष्कारक। ९—द्वेष रखने वाला। १०—संसार। ११ पतंग।

दिल सख़्त नशन्द[1] हो गया है गोया
उससे गिला मन्द[2] हो गया है गोया
पर यार के आगे बोल सकते ही नहीं
'ग़ालिब' मुँह बन्द हो गया है गोया

*

दुख जी के पसन्द हो गया है 'ग़ालिब'
दिल रुक-रुक कर बन्द हो गया है 'ग़ालिब'
वल्लाह की शब को नींद आती ही नहीं
सोना सौगन्ध हो गया है 'ग़ालिब'

*

मुश्किल है ज़िबस[3] कलाम मेरा ऐ दिल
सुन सुन के उसे सुखनवराने-कामिल[4]
आसान कहने की करते हैं फ़रमाइश
गोयम मुश्किल वगर न गोयम मुश्किल[5]

*

इस रिश्ते में लाख तार हों बल्कि सिवा
इतने ही बरस शुमार हों बल्कि सिवा
हर सैकड़े को एक गिरह फर्ज करे
ऐसी गिरहें हजार हों बल्कि सिवा

*

रुक्के का जवाब क्यों न भेजा तुमने
साक़िब हरकत यह की है बेजा तुमने
हाजी कल्लू को दे के बेवज्ह जवाब
'ग़ालिब' का पका दिया कलेजा तुमने

-दुखी । २—शिकायत करने वाला । ३—बस । ४—पूर्ण
--कहूँ तो मुश्किल, न कहूँ तो मुश्किल ।

*

कलकत्ते का जो ज़िक्र किया तूने हम-नशीं
इक तीर मेरे सीने में मारा, कि हाय-हाय
वो सब्ज़ा जा रहा-ए-मुतर्रा[1] कि है ग़ज़ब
वो नाज़नीं[2] बुताने-खुद आरा[3] कि हाय-हाय
सब्र-आज़मां वो उनकी निगाहें कि हफ़[4] नज़र
ताक़त रुबा वो उनका इशारा कि हाय-हाय
वो मेवाहा-ए-ताज़-ओ-शीरीं[5] कि वाह-वाह
वो बादाहा-ए-नाबे-गवारा,[6] कि हाय-हाय

*

आतशबाज़ी है जैसे शग़ले- अत्फ़ाल[7]
है सोज़े-जिगर का भी इसी तौर का हाल,
था मूजिदे-इश्क़[8] भी क़यामत कोई
लड़कों के लिए गया है क्या खेल निकाल।

*

है खल्क़े-हसद क़ुमाश[9] लड़ने के लिए
वहशत कदा-ए-तलाश[10] लड़ने के लिए,
यानी हर बार सूरते-कागज-बार[11]
मिलते हैं ये बदमाश लड़ने के लिए।

१—हरे-भरे बाग। २—सुन्दरी, रूपसी। ३—अपने को सजाने वाली मूर्ति। ४—बुरी नज़र से बचे। ५—मीठे व ताजे मेवे। ६—शुद्ध तथा सुखद मदिरा। ७—बच्चों का खेल। ८—प्रेम का आविष्कारक। ९—द्वेष रखने वाला। १०—संसार। ११ पतंग

दिल सख़्त नशन्द[1] हो गया है गोया
उससे गिला मन्द[2] हो गया है गोया
पर यार के आगे बोल सकते ही नहीं
'ग़ालिब' मुँह बन्द हो गया है गोया

*

दुख जी के पसन्द हो गया है 'ग़ालिब'
दिल रुक-रुक कर बन्द हो गया है 'ग़ालिब'
बल्लाह की शब को नींद आती ही नहीं
सोना सौगन्ध हो गया है 'ग़ालिब'

*

मुश्किल है ज़िबस[3] कलाम मेरा ऐ दिल
सुन सुन के उसे सुखनवराने-कामिल[4]
आसान कहने की क ते हैं फ़रमाइश
गोयम मुश्किल व ार न गोयम मुश्किल[5]

*

इस रिश्ते में लाख तार हों बल्कि सिवा
इतने ही बरस शुमार हों बल्कि सिवा
हर सैकड़े को एक गिरह फर्ज़ करे
ऐसी गिरहें हज़ार हों बल्कि सिवा

*

रुक्के का जवाब क्यों न भेजा तुमने
साक़िब हरकत यह की है बेजा तुमने
हाजी कल्लू को दे के बेवज्ह जवाब
'ग़ालिब' का पका दिया कलेजा तुमने

-दुखी। २—शिकायत करने वाला। ३—बस। ४—पूर्ण
—कहूँ तो मुश्किल, न कहूँ तो मुश्किल।

✻

कहते हैं अब वो मर्दुम आज़ार[1] नहीं
उश्शाक़[2] की पुरसिश[3] से उसे आर[4] नहीं
जो हाथ कि ज़ुल्म से उठाया होगा
क्योंकर मानूँ कि उसमें तलवार नहीं

✻

हम गरचे बने सलाम करने वाले
करते हैं दरंग[5] काम करने वाले
कहते है, कहो ख़ुदा से अल्लाह-अल्लाह
वो आये हैं सुबहो-शाम करने वाले

✻

दो रंगियाँ यह ज़माने को जीते जी हैं सब
कि मुर्दों को न बदलते हुए कफ़न देखा

✻

गर मुसीबत थी, तो ग़ुर्बत में[6] उठा लेते 'असद'
मेरी देहली ही मे होनी थी यह ख़्वारी[7] हाय-हाय

✻

'मीर' के शेर का अहवाल कहूँ क्या, 'ग़ालिब'
जिसका दीवान कमअज़-गुल्शने-कश्मीर[8] नहीं

✻

चन्द तस्वीरे बुतां, चन्द हसीनों के ख़ुतूत
बाद मरने के मेरे घर से ये सामां निकला

✻

१—आदमी को कष्ट देने वाला। २—आशिक का बहुवचन। ३—पूछना। ४—आपत्ति, संकोच। ५—देर, ढील। ६—प्रवास। ७—दुर्दशा। ८—काश्मीर के बाग से कम।